ग्रौर अपनी रक्षा का उन्होंने पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया।

समय रानी लक्ष्मी बाई के पास कोई अच्छे स्वामिभक्त सेवक न थे। कोई ऐसा भी न था कि अँगरेज़ी में पत्र लिख कर अँगरेज़ी अधिकारियों के पास भेजता। रानी साहब जबलपुर, आगरा और सागर के कमिश्नरों के नाम पत्र लिखवाती थीं और उनमें अपने प्रान्त के प्रबन्ध के सब हाल लिखती थीं। वे यह भी लिखती थीं कि वे राज्य का प्रबन्ध तभी तक करेंगी जब तक कोई अँगरेज़ अधिकारी झांसी न आवेगा। इन पत्रों में से कई पत्र सरकारी अधिकारियों के पास पहुँचे ही नहीं। रानी साहब के धूर्त कारिन्दों ने उनको बीचही में दबालिया। परन्तु कई एक पहुँचे भी। इसका प्रमाण है। इस बात को झांसी के कमिश्नर पिंकी साहब ने स्वीकार किया है। इस के सिवाय पूर्वोक्त मार्टिन साहब कहते हैं कि आगरे के चीफ़ कमिश्नर को एक ख़रीता उन्होंने अपने हाथ से दिया! वे लिखते हैं—

She sent Kharittas to Col. Erksine at Jabalpur, and to Col. Fraser, Chief Commissioner of Agra, which *I handed to him with my own hand*, to hear her explanation; but—no!—Jhansi had been a by-word and was condemned unheard!

परन्तु अँगरेज़ों की हत्या के कारण सरकारी अधिकारियों के चित्त बहुत ही क्षुब्ध हो गये थे। इस लिए रानी साहब की बातों पर किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया। भावी बड़ी प्रबल होती है।

इसी समय ओरछा के दीवान नत्थे ख़ां ने रानी साहब को लिखा कि वह झांसी का प्रान्त और क़िला उसके स्वाधीन करदें और ५००० रुपये मासिक पेन्शन उससे लें। इस बात को रानी साहब के सरदारों ने मंज़ूर करना चाहा; परन्तु रानी साहब ने उनको धिक्कारा और पांच गोली तथा बारूद भेजकर नत्थे ख़ां को लिखा कि यही हमारे पास है। इच्छा हो तो चले आवो और ले जाव। इस पर नत्थेख़ां जलभुन गया और उसने झांसी पर चढ़ाई की। रानी साहब ने झांसी के ठाकुरों को इकट्ठा करके उनके सामने एक ओजस्विनी वक्तृता दी और लड़ने के लिए उनको उत्साहित किया। इसका बहुत बड़ा असर हुआ। वे सब लोग मरने मारने पर उद्यत हुए। दोही चार दिनों में रानी साहब युद्ध के लिए तैयार हो गईं। दोनों पक्षों में घोर संग्राम हुआ। अन्त में जब नत्थे ख़ां ने देखा कि उसकी हार होने चाहती है तब उसने रानी साहब से सन्धि करली। रानी साहब ने युद्ध का ख़र्च उससे लेकर विवाद मेट दिया। इस युद्ध की वार्ता रानी साहब ने मध्यभारत के एजण्ट गवर्नर जनरल, सर राबर्ट हैमिल्टन, को लिख भेजी। उन्होंने यह लिखा कि झांसी पर आया हुआ संकट उन्होंने दूर कर दिया और गवर्नमेण्ट का प्रबन्ध होने तक वे उस प्रान्त का प्रबन्ध अच्छी तरह कर रही हैं। यह पत्र नत्थे ख़ां ने बीच ही में रोक दिया। जो सांड़िनी सवार इसे ले जा रहा था उसे उसने मारडाला और एक पत्र सर राबर्ट हैमिल्टन को ऐसा भेजा कि झांसी की रानी विद्रोहियों से मिली हुई है। इस लिए मैं उससे युद्ध कर रहा हूं। अँगरेज़ अधिकारियों का चित्त रानी साहब की ओर से फिर जाने के जितने कारण थे उनमें से यह भी एक कारण हुआ।

जितने दिन राज्य का कारबार रानी लक्ष्मी बाई ने चलाया उतने दिन अच्छी तरह से चलाया। तीन बजे वे कचहरी जाती थीं। उस समय प्रायः वे पुरुष-भेष किये रहती थीं। पैरों में पायजामा, शरीर में बैजनी रङ्ग का अँगरखा, सिर पर टोपी, उसमें सुन्दर बत्ती बँधी हुई, कमर में ज़री का डुपट्टा, उसमें रत्न-खचित तलवार लटकी हुई। ऐसी पोशाक से, रानी साहब की गौरमूर्त्ति, दरबार से लगे हुए एक स्वतन्त्र कमरे में अलग बैठती थी। राज्य के कागज़ पत्र वे स्वयं देखती सुनती थीं; स्वयं आज्ञा देती थीं; और कभी कभी स्वयं अपने हाथ से आज्ञा लिखती भी थीं। जब वे स्त्रियों की पोशाक पहनती थीं तब वे सफ़ेद साड़ी और सफ़ेद ही चोली धारण करती थीं। हाथ में

वे हीरे की चूड़ियां, गले में मोतियों की माला और अनामिका में हीरे की अँगूठी पहनती थीं। इसके सिवा और कोई आभूषण वे न पहनती थीं।

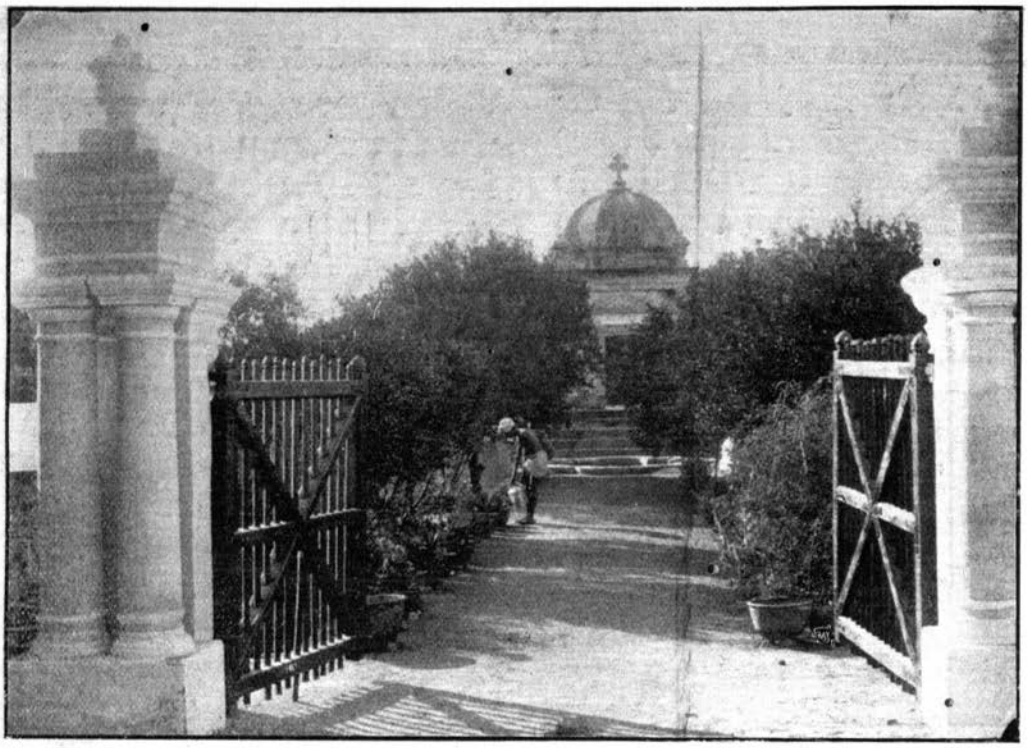
रानी साहब घोड़े पर सवार होने में बड़ी प्रवीण थीं। वे रोज़ घोड़ा फेरती थीं। घोड़े की परीक्षा में भी वे अद्वितीय थीं। एक बार एक व्यापारी दो घोड़े लाया। दोनों देखने में बहुत अच्छे थे। एक पर सवार होकर रानी साहब ने उसकी क़ीमत १००० रुपये ठहराये; परन्तु दूसरे की केवल ५० रुपये। इस अन्तर का कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि दूसरे घोड़े की छाती में चोट है; इसलिए वह निरुपयोगी हो गया है। इस बात को घोड़ेवाले ने स्वीकार किया और रानी साहब की अश्व-परीक्षा की बहुत बड़ाई की।

रानी साहब बड़ी दयालु थीं। वे कङ्गालों को कम्मल दिया करती थीं; धनहीनों की कन्याओं के विवाह के लिए धन दिया करती थीं; और अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझती थीं। नत्थे खां के युद्ध में घायल योद्धाओं को उन्होंने अपने हाथ से आभूषण दिये; उनके शरीर पर हाथ फेरा; और उनके दवा पानी का स्वयं प्रबन्ध किया।

ऐसी चतुर, उदार, और दयालु रानी को शीघ्रही आपदाओं ने घेर लिया। उसकी जीवन-लीला के समाप्त होने का समय निकट आगया। उसको ग्रास करने के लिए, कराल-सेना-रूपी आँधी दक्षिण से बहती हुई झाँसीसे थोड़ी दूर पर आ पहुँची। मेजर जनरल सर ह्यू रोज़ ने झाँसी पर चढ़ाई की।

यद्यपि रानी लक्ष्मी बाई अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट की तरफ़ से झाँसी की राज्य-व्यवस्था चलाती थीं और यद्यपि विद्रोही और लुटेरों को दण्ड देकर प्रजा की रक्षा का उन्होंने योग्य प्रबन्ध किया था, तथापि उचित रीति पर अँगरेज़ों की कृपा सम्पादन करने में, उनके सरदारों की शिथिलता के कारण, अथवा और किसी कारण से, रानी साहब की राजनिष्ठा गवर्नमेण्ट को विदित नहीं हुई। क्योंकि यदि विदित होती तो हमारी कृपालु और न्यायी सरकार कभी झाँसी पर चढ़ाई न करती। ख़ैर! झाँसी में जून १८५७ ईसवी में जो प्रलय हुई उसका वर्णन सुनकर अँगरेज़ अधिकारियों का अन्तःकरण जल उठा। उनको घोर सन्ताप हुआ और विद्रोहियों को दण्ड देने के लिए वे सन्नद्ध हुए। उन्होंने यही समझा कि उस हत्याकाण्ड में रानी साहब अवश्य शामिल थीं। अँगरेज़ों के शूर-सेना-नायक सर ह्यू रोज़ सेप्टम्बर १८५७ में विलायत से बम्बई पहुँचे। उनके साथ दक्षिण से प्रचण्ड सेना मध्य हिन्दोस्तान की ओर चली। जो प्रान्त गवर्नमेण्ट के हाथ से निकल गये थे उनको आधीन करते और विद्रोहियों को उचित दण्ड देते सर ह्यू रोज़ सागर आये। वहां से मदनपुर, बानपुर और चन्देरी विजय करके २० मार्च १८५८ को उन्होंने झाँसी में अपने मोरचे लगाये।

अँगरेज़ी फ़ौज के आते ही झाँसी दरबार में घबड़ाहट हुई। वहां की फ़ौज में जो लोग थे वे बहुत करके पुराने थे। उनको गवर्नमेण्ट ने, झाँसी लेने के समय, निकाल दिया था। इसलिये वे गवर्नमेण्ट के पूरे शत्रु थे। इस द्वेष-बुद्धि के कारण, उन्होंने लड़ने के लिए कमर बाँधी। उस समय झाँसी के दरबार में कोई चतुर मनुष्य न था। अतएव अँगरेज़ी फ़ौज के सम्बन्ध की ठीक ठीक बात न तो रानी साहबही को मिली और न उनके मन की ठीक ठीक बात अँगरेज़ी अधिकारियों ही को मिली। कोई कहता है कि रानी साहब को सरकारी अधिकारियों की ओर से पत्र आया कि वे अपने सरदारों समेत निःशस्त्र होकर उनसे मिलें। कोई कहता है कि किसीने रानी साहब को यह सुझा दिया कि अँगरेज़ अधिकारी उनको क़ैद करना चाहते हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि क्या समझ कर लक्ष्मी बाई ने युद्ध ठाना। परन्तु यह निर्विवाद है कि किसीने सर ह्यू रोज़ के पास जाकर यथार्थ व्यवस्था न कह सुनाई और रानी साहब की ओर



म्युटिनी का स्मारक—झांसी ।



रानी लक्ष्मीबाई का युद्ध ।

गवालियर के एक पुराने चित्र से "सरस्वती" के लिये यह फोटोग्राफ़ उतारा गया है ।

[इ]स गवर्नमेण्ट के अधिकारियों के मन में जो बुरे [वि]चार जमे हुये थे उनको दूर करने का यत्न न किया। [ज]ब विनाश होनेवाला होता है तब मनुष्य की [बु]द्धि विपरीत हो जाती है। झाँसी का भी विनाश [नि]कट आगया था; इसलिए उस समय किसी की [बु]द्धि ठिकाने नहीं रही। अन्त को युद्ध स्थिर हुआ। पतङ्ग ने प्रचण्ड पावक में गिरने का निश्चय किया। [ल]वा ने बाज़ का सामना करना चाहा। कपिला ने [वि]कराल केसरी के सम्मुख होने की तैयारी की।

२३ मार्च १८५८ को युद्ध आरम्भ हुआ। झाँसी को चारों ओर से अँगरेज़ी सेना ने घेर लिया। २४ और १८ पौंडर्स नाम की तोपें शहर की दीवारों पर चलने लगीं और दूसरी तोपों से बम के गोले शहर के भीतर फेंके जाने लगे। झाँसी के चारों ओर जो दीवार है उसकी चौड़ाई कोई १६ फ़ुट है। उसपर और क़िले की बुर्जों पर रानी साहब ने सब मिला कर कोई ५० तोपें लगादीं। उनमें से भवानीशङ्कर, कड़क बिजुली, घनगर्ज और नाल-दार आदि तोपें बड़ी ही भयङ्कर थीं। रानी साहब खुद युद्ध की देखभाल करने लगीं और समय समय पर अपने योद्धा और सेनानायकों को उत्साहित करने लगीं। घोर संग्राम होने लगा। अँगरेज़ी तोपों के गोले शहर में गिर कर फूटने लगे और एक एक बार में दस दस पाँच पाँच आदमियों की हत्या करने लगे। शहर के भीतर अनेक घरों में आग लगा कर, इन गोलों ने, महान हाहाकार मचा दिया। आग की ज्वाला आकाश–मण्डल में उड़ने लगी। यह देख रानी साहब को बड़ा दुख हुआ; परन्तु निराश न होकर उन्होंने युद्ध जारी रक्खा और पहले से अधिक अच्छा प्रबन्ध किया। इस समय, डाकृर लो और डाकृर सिल्वेस्टर अँगरेज़ी फ़ौज के साथ थे। उहोंने इस युद्ध का आँखों देखा वर्णन लिखा है और झाँसी की सेना की वीरता और युद्धकौशल की प्रशंसा की है। स्वयम् सर ह्यू रोज़ ने रानी साहब की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है। उन्होंने लिखा है कि स्त्रियां तक तोपख़ाने में काम करती थीं और गोला बारूद लाने में सहायता देती थीं। यह भयङ्कर युद्ध कई दिन तक होता रहा और दोनों पक्षों को हानि उठानी पड़ी। अँग-रेज़ी सेना की अपेक्षा झाँसी की सेना के वीर अधिक धराशायी हुए।

इस युद्ध का समाचार पाकर नाना साहब पेशवा के सेनापति तात्या टोपे, कालपी से २० हज़ार सेना लेकर, रानी साहब की सहायता को आये। अँग-रेज़ों के पास केवल १२०० सेना थी। तिसपर भी, सर ह्यू रोज़, तात्या टोपे के आगमन से शङ्कित न हुए। ३१ मार्च की रात को उन्होंने अपनी सेना का नया प्रबन्ध करके तात्या टोपे का रास्ता रोक दिया। १ अप्रैल को तात्या टोपे से युद्ध आरम्भ हुआ। अँगरेज़ी तोपों की मार, सवारों के धावे और पैदल सेना की गोलियों ने पेशवा की सेना को जर्जर कर दिया। वह भगी। अँगरेज़ी सेना ने १६ मील तक उसका पीछा किया। इसमें तात्या के १५०० मनुष्य मारे गये और उसकी सारी युद्ध-सामग्री अँगरेज़ी सेना के हाथ आई।

अँगरेज़ी सेना ११ दिन तक झांसी को घेरे पड़ी रही। दोनों ओर से विकट युद्ध होता रहा। तथापि रानी साहब के धैर्य और दृढ़ निश्चय के सामने दूसरे पक्ष का कुछ न चली। जब इस प्रकार शत्रु का पराजय होना सर ह्यू रोज़ ने असम्भव समझा, तब उन्होने २ अप्रैल को शहर और क़िले पर धावा करना विचारा। उन्होंने अपनी सेना के कई भाग किये और प्रत्येक भाग ने अलग अलग धावा किया। अँगरेजों का प्रवेश रोकने के लिए रानी साहब ने भी विकट प्रयत्न किये। उनके शूर गोलन्दाज़ और योद्धाओं ने बड़ी वीरता दिखाई। परन्तु सर ह्यू रोज़ की शिक्षित और युद्ध-कुशल सेना शहर में घुस गई। जब रानी साहब ने अपने बचने का कोई उपाय न देखा तब वे अपने मुख्य मुख्य वीरों और सरदारों को साथ लेकर, और दामोदरराव को अपनी पीठ से बाँध कर, घोड़े पर सवार होकर, अँगरेज़ी सेना से लड़ते हुए, शहर के बाहर होगई।

एक कोमलाङ्गी अबला, नङ्गी तलवार हाथ में लिये हुए, और बड़े बड़े वीर योद्धाओं को उसके आघात से भूतलशायी करते हुए सुरक्षित निकल गई! लेफटनण्ट बाकर ने थोड़ी सी सेना लेकर उनका पीछा किया और रानी साहब के बिलकुल पास पहुँच गये। परन्तु रानी साहब, अपनी तलवार का एक आघात उन पर करके, साफ़ निकल गईं। कोई २४ घण्टे बराबर घोड़े पर बैठकर दूसरे दिन रात को १२ बजे वे कालपी पहुँचीं। १०२ मील वे बिना अन्न जल किये बराबर चली गईं। राव जी पेशवा ने कालपी में अपना अड्डा जमाया था। वहीं उनके यहां रानी लक्ष्मीबाई ने आश्रय लिया।

इस युद्ध में अँगरेज़ों के ३६ सेनाधिकारी और ३०७ सैनिक मरे और घायल हुए और झांसी के ५००० मनुष्य पतन हुए। महाप्रबल और परम-दयालु अँगरेज़ी सरकार से शत्रुता करने का यह भयङ्कर फल झांसीवालों को भोगना पड़ा। यह उचित ही हुआ।

इधर शहर और क़िला हस्तगत करके अँगरेज़ी सेना ने प्रलय आरम्भ कर दिया। एक ओर से शहर में उसने आग लगादी और दूसरी ओर से लड़के और स्त्रियों को छोड़ कर 'बिज़न' बोल दिया। सात दिन तक लूट मार और फूंक फांक होती रही। आठवें दिन प्रजा को अभय वचन दिया गया और जिनका कोई वारिस न था ऐसे मृतकों के ढेर के ढेर रास्ते में फूंक दिये गये!

इसके अनन्तर सर ह्यू रोज़ ने कालपी पर चढ़ाई की। वहां रावजी पेशवा अपनी विद्रोही सेना लिये हुए पड़े थे। १५ एप्रिल १८५८ को अँगरेज़ी सेना वहां पहुँची। वहां भी घनघोर संग्राम हुआ। वहां भी पेशवा की ओर से लक्ष्मीबाई ने अद्भुत शूरता दिखलाई। वे भी सेना के एक भाग की अधिकारिणी थीं। वे बड़े शौर्य और बड़े वेग से प्रबल झंझावात के समान अँगरेज़ी तोपों के २० फुट अन्तर तक धावा करती हुई चली गईं। उन्होंने इस समय, बड़ी ही वीरता की। उनकी इस अखण्ड वीरता को देखकर अँगरेज़ी सेनानायकों को भी आश्चर्य हुआ। परन्तु राव साहब की सेना की अव्यवस्था के कारण रानी लक्ष्मी बाई का शौर्य व्यर्थ गया। इस युद्ध में भी वे यशस्वी न हुईं। खेत सरकारी सेना के हाथ रहा। हज़ारों विद्रोही सिपाही यमलोक को गये। सुव्यवस्थित और युद्ध-कला-निपुण सेना के बल से सर ह्यू रोज़ ने असंख्य विद्रोहियों का पराभव किया। राव साहब पेशवे, बांदे के बाग़ी नबाब और रानी लक्ष्मी बाई इत्यादि कालपी से निकल कर गोपालपुर आये। वहीं तात्या टोपे भी पहुँचे।

२४ अप्रैल १८५८ को अँगरेज़ी सेना ने कालपी को पूर्ण रीति पर अपने हस्तगत किया। वहां उसे अपरिमित गोला बारूद और हथियार मिले। कोई ८०० मन केवल बारूद ही थी! इस सब सामग्री का मोल दो लाख रुपये से अधिक था।

गोपालपुर में सब विद्रोही-समाज ने एकत्र होकर ग्वालियर पर चढ़ाई करना निश्चय किया। अपनी सेना इकट्ठी करके ३० मई १८५८ को वे लोग ग्वालियर के पास मुरार की छावनी में पहुँचे। वहां तात्या टोपे ने सिन्धिया की सेना को उभाड़ कर अपनी ओर कर लिया। १ जून को सिन्धिया और राव जी पेशवा से युद्ध हुआ। जब सिन्धिया ने अपने बचने का दूसरा उपाय न देखा, तब उन्होंने अपने दीवान दिनकरराव को साथ लेकर आगरे का रास्ता लिया। ग्वालियर को हस्तगत करके राव जी ने वहां अपना पेशवेशाही अभिषेक किया और भोगविलास में वे लिप्त हो गये। यह विजय विशेष करके रानी साहबही की सलाह, वीरता और चतुरता का फल था। परन्तु राव जी ने उनका योग्य सम्मान न किया।

राव जी बहुत दिन तक पेशवेशाही का उपभोग नहीं करने पाये। सर ह्यू रोज़ ने ग्वालियर पर शीघ्रही चढ़ाई की और १६ जून १८५८ को वे ग्वालियर के निकट पहुँचे। यह समाचार ज्ञात होते ही पेशवा की सेना में खलबली पड़ गई।

तात्या टोपे ने रानी साहब से सलाह की। रानी साहब ने उनको बहुत धिक्कारा और राव साहब पेशवे की शिथिलता पर खेद प्रकाशित किया। परन्तु वह समय देरी करने का न था। इसलिये उन्होंने धैर्य धारण करने को कहा और सेना के एक भाग का अधिकार ग्रहण करना स्वीकार किया। यह अन्तिम युद्ध समझ कर उन्होंने अपनी सेना को रणोत्साहवर्द्धक वाक्यों से उत्तेजित किया और सब प्रबन्ध शीघ्रही ठीक करके वे युद्ध देने के लिए तैयार हो गईं।

१७ जून को सर ह्यू रोज़, जनरल नेपियर और ब्रिगेडियर स्मिथ आदि अँगरेज़ी सेनानायकों ने बिगुल बजाते हुए युद्ध आरम्भ किया। रानी लक्ष्मी बाई ग्वालियार की ओर से घोड़े पर सवार होकर अपनी तलवार चमकाते हुए अपने सेनाभाग के आगे हुईं। राव साहब पेशवा, तात्या टोपे और बाँदे के नवाब आदि सरदार भी अपनी अपनी सेना को लेकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। जिस ओर रानी साहब थीं उसी ओर ब्रिगेडियर स्मिथ की योजना हुई। उन्होंने अपनी चुनी हुई सेना आगे बढ़ाई। प्रलय काल के वायु-वेग से उनकी सेना रानी साहब की सेना पर टूटी। दोनों दलों में घोर युद्ध होने लगा। मरदानी पोशाक किये हुए रानी साहब अपनी सेना में विद्युल्लता के समान इधर उधर चमकने लगीं। अँगरेज़ी सेना ने उनकी सेना का ध्वंस करना आरम्भ किया। परन्तु रानी साहब ने धैर्य नहीं छोड़ा। दूने उत्साह से वे लड़ती रहीं और अपनी सेना को परमावधि की उत्तेजना देती रहीं। पृथ्वी रुण्ड-मुण्ड-मय हो गई। रुधिर की धाराओं ने भूमि को लाल रङ्ग के कीचड़ से भर दिया। जीत किसी की भी न हुई।

इधर रानी साहब और ब्रिगेडियर स्मिथ इस प्रकार का सेनासंहारी युद्ध कर रहे थे और एक दूसरे की वीरता को मन ही मन सराहते थे। उधर दूसरा ही प्रकार था। सर ह्यू रोज़ की सेना ने पेशवाओं के दो मोरचे ले लिए। यह समाचार जब रानी साहब की सेना को मिला तब उसका उत्साह भङ्ग हो गया। वीर अधीर हो उठे और विजय की आशा उन्होंने छोड़ दी। क्रम क्रम से अँगरेज़ी सेना के आक्रमण की प्रचण्डता बढ़ने लगी और रानी साहब की सेना भगने लगी। परन्तु जब तक सौ दो सौ भी योद्धे उनके पास रहे तब तक वे गलित-धैर्य्य नहीं हुईं। भीम वेग से वे बराबर लड़ती रहीं। जब उन्होंने बचने का कोई उपाय न देखा और अँगरेज़ी सेना ने चारों ओर से उनको घेर लिया, तब बचे हुए दस बीस सवार लेकर उन्होंने अँगरेज़ी सेना के बीच से निकल जाना चाहा। अँगरेज़ी सेना उनको निकलने से रोकने लगी। अन्त में रानी साहब ने अद्वितीय शौर्य्य दिखाया। अनेक योद्धों को उन्होंने अपनी तलवार से कण्ठ-स्नान कराया। अँगरेज़ी सेना के बीच से तलवार के हाथ चलाती हुई वे दूर निकल गईं। उनके पीछे ब्रिगेडियर स्मिथ ने अपने अनेक वीर दौड़ाये। उनमें से कितनेहीं वीरों को रानी साहब ने धराशायी कर दिया। परन्तु बीच में एक नाला आ जाने से उनका घोड़ा उसे न लांघ सका। उनके सब प्रयत्न व्यर्थ. हुए। अतएव वे फिर युद्ध करने लगीं। उनके साथ उनकी दासी मुन्दर भी एक घोड़े पर थी। उसपर एक गोरे ने प्राणहारक आघात किया। वह चिल्ला उठी। रानी साहब ने उसके मारनेवाले के कण्ठ में एक निमिष मात्र में अपनी तलवार रख दी। अँगरेज़ी सेना के वीरों ने रानी साहब को कोई महाशूर सेनानायक समझ कर चारों ओर से घेर लिया। इसपर भी वे ज़रा भयभीत नहीं हुईं। उनकी तलवारें अपना काम बड़ी भीषणता से बराबर करती रहीं। परन्तु एक कोमल और अल्प-वयस्क अबला अनेक वीरों के बीच कब तक सजीव रह सकती है? एक अँगरेज़ योद्धा ने उनके सिरपर पीछे से तलवार का वार किया, जिससे उनके सिर का दाहना भाग छिल गया और एक आँख निकल आई। इस योद्धे ने रानी साहब की छाती पर किर्च का भी प्रहार किया। परन्तु धन्य रानी लक्ष्मी बाई

की वीरता, धन्य उनका धैर्य, और धन्य उनका साहस! इस दशा को प्राप्त हो कर भी उन्होंने उस ओर से पूरा बदला लिया। उसे तत्काल ही उन्होंने धारातीर्थ को भेज कर अपना क्षात्र-धर्म्म सार्थक किया!! धन्य वह शौर्य और धन्य वह पराक्रम!!!

रानी साहब ने जब अपना समय निकट आया जाना तब उन्होंने अपने स्वामिभक्त सरदार रामचन्द्रराव को इशारा किया। वे उन्हें पास की एक पर्णकुटी में ले गये। वहां उन्होंने गङ्गाजल पान करके और अपने पुत्र दामोदरराव को वात्सल्य दृष्टि से देखकर परलोक का मार्ग लिया। १८ जून १८५८ को ग्वालियर के पास समरांगण में भारतवर्ष का महाशौर्य्यशाली दिव्य स्त्री-रत्न खो गया! रानी साहब के सेवक और सरदारों ने एक घास की गञ्जी से घास लाकर उसीकी चिता बनाई और उसीपर रानी साहब का निर्जीव देह रखकर उन्होंने उसे अग्नि देवता के अर्पण कर दिया।

शीघ्र ही राव जी पेशवा और तात्या टोपे आदि विद्रोही समरभूमि छोड़ कर भग निकले। उनकी सेना छिन्नभिन्न हो गई। परमप्रतापी अँगरेज़ सरकार के सम्मुख वे कब तक ठहर सकते थे? ग्वालियर शीघ्रही विद्रोहियों से ख़ाली हो गया। वहां अँगरेज़ी झण्डा फहराने लगा। तीन दिन को राव साहबी पेशवाई ख़ाक में मिल गई। कुछ समय के अनन्तर राव साहब और तात्या टोपे पकड़े गये और उनके कण्ठ में पाश-रज्जु की माला पहनाई गई!

औरों की जाने दीजिए, स्वयं सर ह्यू रोज़ ने रानी लक्ष्मी बाई की बहादुरी की प्रशंसा की है। उन्होंने उनके विषय में गवर्नमेण्ट को इस प्रकार लिखा—

The highest descent of the Ranee, her unbounded liberality to her troops and retainers, and her fortitude, which no reverses could shake, rendered her an influential and dangerous adversary.

अर्थात् रानी साहब की अतिशय ऊंची कुलीनता के कारण, अपने आश्रित और सैनिकों पर उनकी अपार उदारता के कारण, और विकट प्रसङ्ग में भी उनके अद्वितीय धैर्य्य के कारण उनका प्रभाव बढ़ जाने से उनका दल बहुत ही भयङ्कर हो उठा। सर ह्यू रोज़ इतनाही कह कर चुप नहीं हुये। रानी साहब की मृत्यु की वार्ता सुनकर उन्होंने फिर लिखा—

The most important result was the death of the Ranee of Jhansi, who although a lady, was the *bravest and best military leader* of rebels.

अर्थात्—इस युद्ध का सबसे अधिक महत्व का परिणाम झाँसी की रानी की मृत्यु है। यद्यपि वे अबला थीं तथापि विद्रोहियों के पक्ष की वे अत्यन्त शूर और अत्युत्तम सेनाग्रणी थीं। सच है, शूरही शूर की महिमा जान सकता है।

रानी लक्ष्मी बाई का अन्त होने पर दामोदर राव अपने बचे हुए सरदार और सिपाहियों के साथ रन वन घूमते फिरे। उनको जो दुःसह दुःख उठाने पड़े उनका सविस्तर वर्णन सरस्वती में छप चुका है। जब उनकी कारुणिक दशा का समाचार गवर्नमेण्ट को मिला तब उसने सब पुरानी बातें को भुला कर, उन्हें अपना आश्रय दिया। वे इन्दौर में रहते हैं और २००) रुपये महीना गवर्नमेण्ट से पेन्शन पाते हैं। उनके पुत्र का नाम लक्ष्मणराव है।

विचार करने योग्य बातें।

[१]

मैं कौन हूं? किस लिए यह जन्म पाया?
क्या क्या विचार मन में किसने पठाया?
माया किसे, मन किसे, किसको शरीर;
आत्मा किसे कह रहे सब धर्म्म-धीर?

[२]

क्यों पाप-पुण्य-पचड़ा जग-बीच छाया?
माया-प्रपञ्च रच क्यों सब को भुलाया?
आया मनुष्य फिर अन्त कहां सिधारै?
ये प्रश्न क्यों न जड़ जीव सदा बिचारै?

[३]

नाना प्रकार जगमें जन जन्म पाते ;
पीते तथा नित यथा-विध खाद्य खाते ।
तौभी सदैव मरते सब जीवधारी ;
क्यों अल्पकालिक हुई फिर सृष्टि सारी ?

[४]

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भयसे बिचारे
होते प्रकम्प-परिपूर्ण मनुष्य सारे ।
क्या बाघ है ? विशिख है ? अहि है विषारी ?
किम्वा विशाल-तम तोप दृढ़ाङ्गधारी ?

[५]

पृथ्वी-समुद्र-सरिता-नग-नाग-सृष्टि ,
माङ्गल्य-मूल-मय वारिद-वारि-वृष्टि ।
कर्तार कौन इनका ? किस हेतु नाना
व्यापार-भार सहता रहता महाना ?

[६]

विस्तीर्ण विश्व रच लाभ न जो उठाता ,
स्रष्टा समर्थ फिर क्यों उसको बनाता ?
जो हानि-लाभ कुछ भी उसको न होता ,
तो मूल्यवान फिर क्यों निज काल खोता ?

[७]

कोई सदैव सुख-युक्त करैं विहार ;
कोई अनेक-विध दुःख सहैं अपार ।
जो भेद-भाव सबमें यह विद्यमान ;
क्या बीज-वस्तु उसकी जगमें प्रधान ?

[८]

तेजोनिधान रवि-बिम्ब सुदीप्ति-धारी;
आल्हादकारक शशी निशि तापहारी ।
जो ये प्रकाशमय पिण्ड गये बनाये ;
तो व्योम-बीच कब ये किस भाँति आये ?

[९]

क्यों एक देश सहसा बल-वृद्धि पाता ?
क्यों अन्य दीर्घ-दुख-सागर में समाता ?
ये खेल कौन, किस कारण, खेलता है ?
क्यों नित्य नित्य सुख में दुख मेलता है ?

[१०]

ये हैं महत्व-परिपूरित प्रश्न-सार ;
एकान्त जो नर करैं इनका विचार ।
होवैं अवश्य जन वे जग में महान ,
सज्ञान और वर-बुद्धि-विवेकवान ॥

मेरी मैया ।

(James Taylor कृत "My Mother" का भावार्थ)

[१]

Who fed me from her gentle breast ;
And hushed me in her arms to rest ;
And on my cheeks sweet kisses pressed ?
My mother.

✲

किसने अपने स्तन से मुझको
सुमधुर दूध पिलाया था ?
लेकर गोद, प्रेम से थपकी
दे दे, मुझे सुलाया था ?
चूम चूम कर किसने मेरे
गालों को गरमाया था ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[२]

When sleep forsook my open eye ;
Who was it sang sweet lullaby ;
And rocked me that I should not cry ?
My mother.

✲

बिलख बिलख कर रोता था जब
नींद न मुझको आती थी;
आरी निँदिया ! आरी निँदिया !
कह कर कौन सुलाती थी ?
और प्यारसे पलने में रख .
मुझको कौन झुलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[३]

Who sat and watched my infant head,
When sleeping in my cradle-bed;
And tears of sweet affection shed?
My mother.

✻

बालपने में पलने ऊपर
मुझे नींद जब आती थी;
मुख मेरा विलोक मनही मन
कौन महा सुख पाती थी ?
और प्यार के आँसू बैठी
बैठी कौन बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[४]

When pain and sickness made me cry,
Who gazed upon my heavy eye;
And wept for fear that I should die?
My mother.

✻

व्यथित और बीमार देख कर
मुझे, कौन अकुलाती थी ?
बैठी बैठी मेरे मुख पर
आँखें कौन गड़ाती थी ?
औ मेरे मरने के डर से
आँसू विपुल बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[५]

Who ran to help me when I fell;
And would some pretty story tell;
Or kiss the part to make it well?
My mother.

✻

मुझे गिर गया देख, दौड़ कर,
तत्क्षण कौन उठाती थी ?
फिर मेरा जी बहलाने को
बातें कौन बनाती थी ?
अथवा फूं क फूं क कर अच्छी
हुई चोट बतलाती थी;
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[६]

And can I ever cease to be
Affectionate and kind to thee,
Who wast so very kind to me?
My mother.

✻

जिसने प्यार किया अति मेरा
कैसे उसे भुलाऊंगा ?
नहीं स्वप्न में भी मैं उससे
मन अपना बिलगाऊंगा।
गुण उसके गाकर मैं उससे
अविरल प्रीति लगाऊंगा।
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[७]

Ah! No, the thought I cannot bear;
And, if God please my life to spare,
I hope I shall reward thy care,
My mother.

✻

सोच सोच कर इन बातों को
जो मेरा घबड़ाता है;
ईश कृपा से यह शरीर यदि
इस जग में बच जाता है,
एक दिवस देखना दास यह
फल इसका दिखलाता है।
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

[८]

When thou art feeble, old, and gray;
My healthy arm shall be thy stay;

And I will soothe thy pains away.
My mother.

✻

कमर जायगी जब झुक तेरी
ग्रौर बाल पक जावैगा;
मेरा भुज लम्बा बलशाली
तेरा टेक कहावैगा;
ग्रौर बुढ़ापे का दुख तेरा
क्षण भर में बिनसावैगा।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

[९]

And when I see thee hang thy head,
'T will be my turn to watch thy bed;
And tears of sweet affections shed.
My mother.

✻

जब तेरा सिर शय्या ऊपर
पड़े पड़े झुक जावैगा;
तब इस सेवक की ग्रावैगी
बारी, तुझे उठावैगा;
ग्रौर, उस समय, प्रबल प्रेम से
उमगे ग्रश्रु बहावैगा।
मेरी मैया! मेरी मैया!
जैनेन्द्रकिशोर।

ग्रज्ञान ग्रौर विज्ञान।

[२]

मैं हाथ पैर फैलाकर बिछौने पर गिर पड़ा। इङ्गलैण्ड के जाड़े की रात में देह से पसीना चल निकला। एक ते। ग्रन्धेरी कोठरी, तिसपर झिलमिलियां सब बन्द,—मेरी सांस रुकने लगी। घबराहट से दम घुटने लगा। जान पड़ा कि ग्रब मेरे प्राण निकल जायंगे। ग्रौर मुझसे नहीं रहा गया। झिलमिली खोलने की इच्छा से मैं उठ खड़ा हुग्रा। ग्रन्धेरे में दिवाल छूकर धीरे धीरे चलने लगा। पर्दे से हाथ छू गया। मैंने समझा यहां पर खिड़की है। ग्रँहः, यह छोटे पलङ्ग की मसहरी थी। फिर हाथ फैलाकर ग्रागे बढ़ा। दो तीन बार कुर्सियों से ठोकर खाकर "पपात धरणीतले" का उपक्रम हुग्रा। एक बार किसी वस्तु का शब्द हुग्रा; सोचकर मैंने जाना कि पैर से कल दबकर कल से पानी गिर रहा है। इस बार खिड़की मिली। पर्दा हटा कर जो मैं खिड़की खोलने लगा ते। "ग्ररे-रे-रे-रे-उः-हुः-उः-उः",—मैं कूदकर भागने लगा, ते। एक कुर्सी में पैर ग्रटक कर मैं गिर पड़ा। इस जाड़े की रात में सावन भादों की जल धारा के समान बर्फ़ से भी ठंढे, जल की धार बड़े वेग से मेरे सिर पर बरसने लगी। खिड़की समझकर स्नान के झरने के नीचे मैं चला गया था। कांपते कांपते पोर्टमेण्टो को ढूंढ़कर उसमें से एक पायजामा निकालकर मैंने पहना, ग्रौर रज़ाई लपेटकर मैं फिर जा सोया।

बिछौने पर फिर जाकर सोया ते। सही; परन्तु ग्रन्धेरे में जी बहुत घबड़ाने लगा। एकाएक मुझे सुध ग्राई कि मैं बड़ा निर्बुद्धि हूं, ग्रन्धेरे में इतना क्लेश पाने के पहिले मुझे गैस जलाना उचित था। ग्रौर गैस का जलाना कुछ कठिन भी नहीं था; मुट्ठा दबाने भर की देर थी।

मैं फिर उठा; ढूंढ़ते ढूंढ़ते मुट्ठे पर हाथ पहुँचा; उसे मैंने ज़ोर से दबाया। पर गैस नहीं जला! एँ, ये फिर क्या हुग्रा? इतनी रात को घण्टा क्यों बजने लगा? हाय, हाय, गैस जलाने के बदले मैंने एलार्म दबा दिया!! हाय, हाय, महा ग्रनर्थ होगया; छत पर बड़े ज़ोर से घण्टा बजने लगा। ग्रभी मुहल्ले भर के लोग दौड़े ग्रावेंगे। क्या करूं, घण्टा रोकने का उपाय मैं नहीं जानता हूं। क्या करूं, कहां जाऊं? दौड़ कर हार्वी के कमरे में जाऊं। इसे छोड़ दूसरा उपाय नहीं। नल में होकर उसे पुकारूं? नहीं, नहीं, प्राण रहते वह काम फिर मुझसे नहीं होगा। झटपट घबराकर ज्यों बाहर

निकलने लगा, त्योंही—एक मेज़ पर नाना भांति के खिलौने सजाए रक्खे थे—धक्का लगकर वह धड़ाम से उलट गई। उसपर की सब वस्तु गिरकर चकनाचूर हो गईं। इतने में हार्वी आ पहुँचा।

हार्वी—क्या हुआ? अरे, क्या हुआ?

मैं—जो हुआ सो हुआ; पहिले अपने घण्टे को रोको।

हा—यह लो, घण्टा बन्द हो गया। तुम थोड़ी देर ठहरो। मैं अब पहिले नीचे जाता हूं। मुहल्ले भर के लोग सब द्वार पर इकट्ठे हो गये हैं।

हार्वी ने तार के द्वारा सबको समझा दिया कि भूल से घण्टा बज गया है; वास्तव में कोई दुर्घटना नहीं हुई। फिर आकर उसने मेरे कमरे का गैस जला दिया।

मैंने कहा, भाई, कुछ मन में बुरा न मानना; अन्धेरे में नींद नहीं आई; जी घबड़ाने लगा; उठकर गैस जलाने लगा तो घण्टा बज उठा।

हा—तो क्या हुआ! कुछ चिन्ता नहीं। मैं अब जाता हूं। जाकर सोऊं। देखो, मैं नङ्गा ही दौड़ा आया हूं। कुर्ता तक पहनने का अवकाश मुझे नहीं मिला। भाई, बड़ा जाड़ा लग रहा है, मैं जाता हूं।

मैं—ठहरो, ठहरो। मुझे एक बात कहना है। मैं एक और आपत्ति में फंस गया था। तुम्हारी नली से तुमको बुलाने के बदले मैंने मिस हार्वी को बुलाया था। इससे वह—

हार्वी—रहने दो—वे सब बातें कल सुनूंगा। उसके लिये चिन्ता ही क्या है? सबेरे सब ठीक हो जायगा। मैं जाता हूं।

हार्वी चला गया। मैं अपनी कथा उससे नहीं कह सका। सबेरे अपना मुंह कैसे दिखाऊंगा। यदि यहां से किसी तरह भाग सकता तो अच्छा होता। मैंने सोचा, क्या भागना असम्भव है। घड़ी में कुल ४ बजे हैं। जाना ही हो तो इसी समय जाना अच्छा है। थोड़ी देर में लिडी जगेगी; उससे मैं कैसे मिलूंगा? रेलवे का टाइमटेबिल साथ ही था, उसे खोलकर देखा, ठीक ५ बजे एक गाड़ी लण्डन को जाती है। तो फिर इसी समय चल देना ठीक है। मेरा पोर्टमैण्टो छोटा सा है; उसे हाथ में लटका कर लेजा सकता हूं।

यों सोचकर मैंने एक काग़ज़ पर लिखा, "मैं बिना कहे चला जाता हूं; तुम बुरा न मानना। मेरे विषय में कोई कुछ कहे तो सब झूठ समझना। लण्डन पहुँचकर पत्र में सब समाचार लिख भेजूंगा"।

मेज़ पर काग़ज़ को रखकर धीरे धीरे किवाड़ खोलकर, जूतों को आहट न हो, इसलिये उन्हें हाथ में लेकर, मैं सीढ़ी से नीचे उतरा। द्वार सामने था। द्वार पर हरे रङ्ग के साटिन का एक पर्दा लटक रहा था। उसे हटाकर किवाड़ों पर मैंने धक्का दिया; पर उन्हें बन्द पाया। हथकल को घुमाने से वह खुल सकता है, यह सोचकर ज्योंही मैंने हथकल को पकड़ा—आ-आ-आ-आ-उ-उ-उ-म-म-म-रा-आ-आ। हार्वी के चोरकल में मैं फँस गया! दहिने हाथ से मैंने हथकल को पकड़ा था, इसलिए उसने भी मेरे उसी हाथ को बड़े ज़ोर से पकड़ रक्खा। मैंने उसे छोड़ दिया; पर उसने मेरा हाथ नहीं छोड़ा। पोर्टमैण्टो को रखकर बाएं हाथ से मैं दाहने हाथ को छुड़ाने लगा; पर वह भी वहीं लग गया!!! दोनों हाथ पकड़ गये। केवल हाथों ही को यन्त्रणा होती तो भी मैं सह लेता। परन्तु मेरे सारे शरीर में बिजुली के धक्के (Galvanic shock) लगने लगे।

अकस्मात् मेरे शरीर का कांपना बन्द हुआ। मैं अधमरा होकर पास के एक बेंच पर बैठ गया। देखा, सामने हार्वी खड़ा है। मेरी दारुण यन्त्रणा को देखकर उसने पूछा, तुम चोरकल में कैसे आकर फँस गये? मैंने हांफते हांफते उत्तर दिया; मैं घर जा रहा था। रातभर तो महादुःख उठाया; पर यह सब दुःखों का लकड़दादा है। ओः! मैं अधमरा हो गया हूं। अब द्वार खोल दो; मैं चला जाऊं।

हार्वी—वाह! आओ, ऊपर चलो! घर कैसे जाओगे?



विश्वकर्म्मा मन्दिर—यलोरा।



कैलाश वा रङ्गमहल—यलोरा।

मैं—नहीं, मैं नहीं ठहरूंगा; मैं निश्चय ही चला जाऊंगा। तुमने अच्छा घर बना रक्खा है, इधर नल, उधर हथकल; इधर बैटरी, उधर तार; इधर घण्टा, उधर पानी। बापरे बाप, भूतों का घर है! यहां क्या भले आदमी रह सकते हैं? खोलो, द्वार खोल दो, नहीं तो गाड़ी चूक जाऊंगा।

हार्वी—सचमुच ही जाओगे? तो थोड़ा सा ठहर जाओ, साईस से गाड़ी जोतने कह दूं; वह तुम्हें स्टेशन पर पहुँचा आवेगा। तब तक लिडी से कुछ भोजन ले आने को कह दूं। वह अब जगी होगी।

अब तक मैं कड़ी कड़ी बातें कह रहा था। परन्तु लिडी का नाम सुनते ही मुझे फिर कँपकँपी चढ़ आई। मैंने कहा, नहीं, नहीं, भोजन की आवश्यकता नहीं है। मैं चला। गुडबाई।

हार्वी—क्यों भाई, पांच मिनिट भी नहीं ठहरोगे?

मैं—भाई, क्षमा करो, उसके जगने के पहिले ही मैं जाऊंगा। गुडबाई। गुडबाई।

हार्वी—तो एक मिनिट भर और ठहर जाओ; मैं भी कपड़े पहन आऊं। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा

मैं—भाई, मैं तुम्हारे पैर छूता हूं। मैं और—

इतने ही में सीढ़ी परसे किसी के पैरों की आहट आई। क्या मैं वहां पर और ठहर सकता था? गुडबाई कह कर ही मैं दौड़ा। फाटक के पास पहुँच कर फिर सुध आई कि यहां पर भी फिर कोई कल बल न लगी हो। मैंने चिल्ला कर पूछा, "क्यों भाई, यहां भी किसी भांति का दुःख तो नहीं है"?

हार्वी-दुःख कैसा? कोई डर की बात नहीं है।

मैं—कोई हथकल, चोरकल तो नहीं है।

हार्वी-नहीं, नहीं, तुम निश्चिन्त होकर जाओ,

फाटक को मैंने पैर से खोला, हाथ नहीं लगाया। फाटक कहीं देह से न छू जाय, इसलिये बड़ी सावधानी से मैं बाहर निकला।

बाहर सड़क पर आकर मैंने एक लम्बी सांस भरी। शरीर में फिर प्राण लौट आये।

उचित समय पर मैं लण्डन आ पहुँचा। अब मैं और ह्विस्कर्स (मोछें) नहीं रखाता।

दो दिन पीछे हार्वी का पत्र आया। यद्यपि उसने मेरी हँसी उड़ाई थी, तो भी पत्र को पढ़कर मुझे क्रोध आगया। पत्र में एक जगह लिखा था—"छिः, छिः, तुम लिडी की कोठरी में जाने को तैयार थे। यह तुमने अच्छा नहीं किया। भले आदमियों के घर की दासियों के प्रति ऐसा आचरण बड़ी घृणा की बात है। विशेष कर जहां मित्रता का बर्ताव है, यदि वहां ऐसे चलन के मनुष्य हों तो बड़े दुःख की बात है"।

पत्र को मैंने टूक टूक कर डाला। इसका उत्तर मैंने नहीं भेजा।

कुछ दिनों में हार्वी स्वयं मेरे पास आया। मुझसे क्षमा मांगने पर मैं उससे बोला था; परन्तु मैंने प्रतिज्ञा कर लिया कि उसके घर में फिर कभी न जाऊंगा॥

कुमुदबन्धु मित्र।

एलोरा के गुफा-मन्दिर।

[२]

दशावतार में विष्णु के दस अवतारों की मूर्तियों के सिवा शिव की भी कितनी ही मूर्तियां हैं। अतएव यह गुफा-मन्दिर शैव और वैष्णव, दोनों प्रकार के, मन्दिरों का मिश्रण है। इसका मण्डप ३१ फुट चौड़ा, २६ फुट गहरा और १०३/४ फुट ऊंचा है। इसमें एक खण्डित शिलालेख है। इस लेख में राष्ट्रकूटवंशीय ६ राजाओं के नाम पाये जाते हैं। राष्ट्रकूटों ने ६०० से लेकर १००० ईसवी तक दक्षिण में राज्य किया। इस लेख में जिन नरेशों के नाम हैं वे ये हैं—

१	दान्तिवर्म्मा	(६००–६३० ई०)
२	इन्द्रराज, प्रथम	(६३०–६५० ई०)
३	गोविन्दराज, प्रथम	(६५०–६७५ ई०)
४	कर्कराज, प्रथम	(६७५–७०० ई०)

५ इन्द्रराज, द्वितीय (८००–८३० ई०)
६ दान्तिदुर्ग (७५३ ई०)

इस लेख में कई श्लोक पूरे हैं, और भली भांति पढ़े जा सकते हैं। इन्द्रराज की प्रशंसा में एक श्लोक यह है—

विकासि यस्य क्षणदास्वविक्षतं शशाङ्कधामव्यपदेशकारि ।
करोति सम्प्रत्यपि निर्म्मलं जगत् प्रसन्नदिङ्मण्डलमण्डनं यश:

यह बहुत ललित और कोमलावृत्ति-वलित पद्य है। इन्द्रराज के पुत्र गोविन्दराज के वर्णन में एक श्लोक यह है—

दुर्वारोदारचक्र: पृथुतरकटक: क्ष्माभृदुन्मूलनेन
ख्यात: शङ्खाङ्कपाणिर्बलिविजयमहाविक्रमावाप्तलक्ष्मी:
क्षोणीभरावतारी विषममहिपतेस्तस्य सूनुर्नृपोऽभूत्
मान्यो गोविन्दराजो हरिरिव हरिणाक्षीजनप्रार्थनीय: ॥

इन राजाओं में दान्तिदुर्ग बड़ा प्रतापी हुआ। उसने अनेक राजाओं पर विजय पाई। चालुक्य-राज वल्लभ तक को उसने पराजित करके अपना करद बनाया। उसकी प्रशंसा में लिखा है—

दण्डेनैव जिगाय वल्लभबलं य: सिन्धुदेशाधिपं
काञ्चीशं सकलिङ्गकोशलपतिं श्रीशैलदेशेश्वरम् ।
शेषान् मालवलाटगुर्जरपतीनन्यांश्च नीत्वा वशं
य: श्रीवल्लभतामवाप चरणं न्यस्य द्विषां मस्तके ॥

अर्थात् सिन्धु, काञ्ची, कलिङ्ग, कोशल, शैल, मालव, लाट, गुर्जर और चालुक्य आदि सब देशाधिपों के मस्तक पर चरण रखकर वह लक्ष्मी का प्यारा हुआ। दान्तिदुर्ग के अनन्तर उसका चचा कृष्णराज नरराज हुआ। इस कृष्णराज का नाम इसी राष्ट्रकूटवंशीय कर्कराज राजा के दानपत्र में आया है। यह दानपत्र इण्डियन ऐण्टिक्वेरी की बारहवीं जिल्द में छपा है। वहां पर ये तीन श्लोक यलोरा के विषय में हैं—

एलापुराचलगताद्भुतसन्निवेशं
यद्वीक्ष्य विस्मितविमानचरामरेन्द्रा: ।
एतत्स्वयम्भु शिवधाम न कृत्रिमे श्री-
र्दृष्टेदृशीति सततं बहु चर्चयन्ति ॥ १ ॥

भूयस्तथाविधकृतौ व्यवसायहानि-
रेतन्मया कथमहो कृतमित्यकस्मात् ।
कर्तापि यस्य खलु विस्मयमाप शिल्पी
तन्नामकीर्तनमकार्यत येन राज्ञा ॥ २ ॥

गङ्गाप्रवाहहिमदीधितिकालकूटै-
रत्यद्भुताभरणकै: कृतमण्डनोऽपि ।
माणिक्यकाञ्चनपुर:सरसर्वभूत्या
तत्र स्थित: पुनरभूष्यत येन शम्भु: ॥ ३ ॥

भावार्थ—एलापुर के पर्वत पर जो मन्दिर है उसको देखकर देवताओं को भी विस्मय होता है। वे उसे स्वयंभू शिवस्थान समझ कर उसकी पूजा करते हैं। क्योंकि कृत्रिम स्थान को ऐसी शोभा कभी नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १ ॥ "इस प्रकार का मन्दिर फिर बनाने में व्यवसाय की हानिमात्र है; मैं खुद नहीं जान सकता कि ऐसी अद्भुत इमारत मैंने कैसे बनाई?"—इस प्रकार, जिस मन्दिर के बनानेवाले कारीगर को भी आश्चर्य हुआ उसका नाम-कीर्तन उस (कृष्णराज) राजा ने कराया ॥ २ ॥ गङ्गा, चन्द्रमा और कालकूट-रूपी अद्भुत आभूषणों से आभूषित होने पर भी, उस मन्दिर में प्रतिष्ठित शम्भु को उस राजा ने माणिक और सुवर्ण आदि के विभूषणों से पुनर्वार विभूषित किया ॥ ३ ॥

यह एलापुर यलोरा ही है। इसके पास एक प्राचीन नगर के चिन्ह अब तक पाये जाते हैं। वह पुराना नगर नष्ट होगया। इस समय का यलोरा ग्राम यद्यपि पुराने नाम का अपभ्रंश है, तथापि वह एलापुर नहीं है। दशावतार में कोई लेख ऐसा नहीं है जिससे इसका पता लगे कि कब और किसने उसे बनाया। यह मन्दिर आठवीं शताब्दी के आरम्भ का बना हुआ जान पड़ता है, और सम्भव है कि दान्तिदुर्ग ही ने इसे निर्म्माण कराया हो। क्योंकि उसीके अनन्तर होनेवाले कृष्णराज ने उसमें प्रतिष्ठित शिवमूर्ति को फिर से अलंकृत किया। पूर्वोक्त श्लोकों में जो शिवमन्दिर की प्रशंसा है वह कैलाश-नामक मन्दिर के लिए अधिक उपयुक्त

है, दशावतार के लिये नहीं; क्योंकि कैलाश ही सबसे बड़ा मन्दिर है। नहीं मालूम, यह शिला-लेख दशावतार पर कैसे आया।

दशावतार की मूर्तियां अवलोकनीय हैं। इस मन्दिर का एक भाग केवल विष्णु के अवतारों के लिये रक्खा गया है। उसमें पहले कृष्ण की मूर्ति है; उसके छ हाथ हैं; उस पर गोवर्द्धन रक्खा है; नीचे गो, गोप और गोपी सब खड़े हैं। फिर शेष पर नारायण की मूर्ति है। उसके आगे गरुड़ पर विष्णु; पृथ्वी को लिये हुए वराह; याचक वेष में वामन; हिरण्यकशिपु को हनन करते हुए नृसिंह हैं। द्वार पर विशाल-काय द्वारपाल हैं। मन्दिर के दूसरे भाग में शिव का साम्राज्य है। वहां पर, कहीं काली के ऊपर खड़े हुए भैरव दर्शकों को भयभीत कर रहे हैं; कहीं अपने विकटाकार गणों को लिए हुए अष्ट-भुज त्रिलोचन ताण्डव में निमग्न हैं; कहीं शान्त-मूर्ति शिव पार्वती के साथ चौपड़ खेल रहे हैं; कहीं कैलाश समेत शिव और पार्वती को उठा ले जाने के लिए लङ्केश्वर रावण को यत्न करते देख नन्दी, भृङ्गी आदि गण उसका उपहास कर रहे हैं; और कहीं सदाशिव जी मार्कण्डेय पर अपना वरदहस्त रखकर यमराज को त्रिशूल की नोक दिखा रहे हैं। तीसरी तरफ़ एक लक्ष्मी की मूर्ति है; उस पर चार हाथी जलाभिषेक कर रहे हैं। चार पुतलियों के ऊपर कमलासन है; उसी पर लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित है। चार शरीर-रक्षक प्रतिमा के सामने खड़े हैं। वे सब शस्त्रों से सज्जित हैं; और कलश, शङ्ख, चक्र और कमल भी लिए हुए हैं। पासही विष्णु की एक मूर्ति है; त्रिशूल और कमल हाथ में है; एक विशाल पक्षी मूर्ति के दाहिने हाथ से कुछ खा रहा है; बांई तरफ़ एक खर्वाकार बौना खड़ा है। चौथी तरफ़, फिर शिव की एक मूर्ति है, जिसके दोनों ओर से ज्वाला निकल रही है। पासही विष्णु हैं; वे शिव की पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मा भी वहीं हैं; वे ऊपर उड़ कर शिव के शीश का पता लगाने का यत्न कर रहे हैं। वराह भी वहीं हैं; वे मूर्ति के नीचे पृथ्वी खोद कर उसके निचले भाग का पता लगाना चाहते हैं। यह दृश्य एक पौराणिक प्रसङ्ग का सूचक है। महिम्न के "तवैश्वर्य्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चो हरि-रधः" इस श्लोक में इसी दृश्य का उल्लेख है।

दशावतार भी पहाड़ को काट कर उसके भीतर बनाया गया है। उसकी छत और खम्भों पर आश्चर्य्य-कारक काम है। खम्भे बहुत बड़े और मोटे हैं; उन पर बारीक बेल बूटे कढ़े हुए हैं; और अनेक छोटी बड़ी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। उनको चित्र में देखकर ही चित्त विस्मित होता है, प्रत्यक्ष देखने पर देखनेवालों के मन में क्या भाव उदित होगा यह देखने से ही जाना जा सकता है।

यलोरा में जितने गुफ़ा-मन्दिर हैं—बौद्ध, जैन और हिन्दू—सबमें कैलाश प्रधान है। दक्षिण में पट्टदकल नामक एक प्राचीन स्थान है। उसमें "विरूपाक्ष" नाम का एक पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर चालुक्य-वंशीय दूसरे विक्रमादित्य राजा की रानी ने ७३० ईसवी के लग भग बनवाया था। कैलाश मन्दिर विरूपाक्ष से बहुत कुछ मिलता है। इस बात से, तथा कैलाश में जो एक शिलालेख का टूटा हुआ टुकड़ा मिला है, उससे यह अनुमान किया जाता है कि ७३०–७५५ ई० में, यह मन्दिर राष्ट्रकूट (राठोड़) वंशीय राजा दान्तिदुर्ग के राज्य-काल में बना था। सम्भव है, दान्तिदुर्ग ही ने इसे बनवाया हो। यह मन्दिर अपनी प्रकाण्डता और अपने अद्भुत शिल्प-कर्म्म के लिए, भरतखण्ड भर में, सब प्राचीन इमारतों में प्रधान है। इसका केवल भीतरी भाग ही पर्वत काट कर नहीं बनाया गया, किन्तु बाहरी भाग भी। पार्वतीय चट्टान का एक प्रचण्ड भाग काट कर पहले अलग कर दिया गया है। फिर उस अलग किये गये प्रस्तर-समूह को भीतर और बाहर तराश कर उसी का मन्दिर बनाया गया है। पहाड़ से एक हाथ भर का सुडौल टुकड़ा काटने में कितना श्रम और कितनी कुशलता दरकार होती है; फिर मण्डप-

मण्डित और अनेक शिखरधारी एक विशाल मन्दिर को, पत्थर तराश कर, खड़ा कर देना कितने श्रम, कितने व्यय और कितनी कारीगरी का काम है। यह विचार करने पर आतङ्क से चित्त की अजब हालत होती है। कैलाश का भीतरी भाग नाना प्रकार के रङ्गीन चित्रों से चित्रित है; बाहर भी कहीं कहीं ऐसे चित्र हैं। ये चित्र यद्यपि अब बुरी अवस्था में हैं, तथापि अभी तक वे ऐसे हैं कि उनको देखकर भारत की चित्रविद्या का थोड़ा बहुता सजीव चित्र देखने को मिलता है। पत्थर में खुदाई का काम तो, इसमें, सब कहीं है,–भीतर भी और बाहर भी—और ऐसा उत्तम है कि उसे देखकर बड़े बड़े विलायती कारीगरों की अक़ल काम नहीं करती। जिस प्राङ्गण में कैलाश का मन्दिर बना है उसकी लम्बाई २७६ फुट और चौड़ाई १५४ फुट है।

कैलाश के चार खण्ड हैं। मन्दिर में कई लम्बे लम्बे कमरे हैं, जिनमें अनगिनत मूर्तियां हैं। इसके शिखर एक के ऊपर एक, दूर तक चले गये हैं। छत और खिड़कियों में ऐसा काम किया हुआ है, कि वह देखते ही बनता है; उसका यथार्थ वर्णन सर्वथा वर्णातीत है। इसके प्रकाण्ड स्तम्भ ऐसे मनोमोहक बेल बूटों से सुसज्जित हैं कि उन्हें देखकर उनके मनुष्य-कृत होने में शङ्का होती है। गोपुर के ऊपर शिला-निर्मित महाभयानक सिंह अपने बनानेवाले शिल्पियों के शिल्पचातुर्य्य की पराकाष्ठा प्रकट करते हैं।

इस मन्दिर में पौराणिक दृश्यों की बहुतही अधिकता है। उनके शतांश का भी वर्णन इस छोटे से लेख में नहीं आ सकता। प्रायः कोई भी पौराणिक दृश्य ऐसा नहीं जिसका चित्र इसमें न हो। दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, दैत्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा सभी कुछ इसमें हैं। मन्दिर के एक भाग में, एक जगह, सिंहवाहिनी चण्डिका महिषासुर का मर्दन कर रही हैं; पास ही नन्दी पर आरूढ़ महादेव हैं; ऊपर दिग्पाल, देवता और गन्धर्वों सहित आनन्द-पुलकित होकर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। दूसरी जगह चतुर्भुज कृष्ण, कालिय की फणा पर पैर रक्खे हुए, उसकी पूंछ को पकड़ कर खींच रहे हैं। तीसरी जगह नागराज को पैर से दबाये हुए शङ्ख, चक्र आदि आयुधधारी वराह पृथ्वी को उठा रहे हैं। कहीं त्रिविक्रम हैं; कहीं नृसिंह हैं; कहीं शेषशायी विष्णु हैं। मन्दिर के दूसरे भाग में शिव की कोई २० प्रकार की मूर्तियां भिन्न भिन्न दृश्यों की व्यञ्जक हैं। कहीं त्रिशूलधारी काल-भैरव पार्वती को लिए खड़े हैं; कहीं षड्भुज सदाशिव त्रिपुरासुर से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं; कहीं धूर्जटि हर जटा फटकारे, डमरू, त्रिशूल और भिक्षा-पात्र लिये हुए, सम्मुख अम्बिका की ओर देख रहे हैं; कहीं अर्द्ध-नारीश्वर नर-नारियों को दर्शन दे रहे हैं। नन्दी की अनेक प्रतिमायें हैं; कितनीहीं शिव-मूर्तियों के पास नन्दी जो विराजमान हैं। परन्तु मन्दिर के सामने नन्दि-मण्डप के भीतर जो नन्दी की मूर्ति है वह सबसे अच्छी और सबसे बड़ी है। कहीं कहीं भृङ्गी आदि और भी गण हैं। ब्रह्मा और वीरभद्र की कई प्रतिमायें हैं।

इस मन्दिर के शिखरों पर और बाहर भी अनेक मनोमोहिनी मूर्तियां हैं। किसी किसी जगह के मूर्ति-समुदाय का दृश्य बहुत ही चित्ताकर्षक है। इसमें युद्ध के भी दृश्य हैं। उनमें से कुछ ऐसे अच्छे हैं कि उनके फोटोग्राफ़ लेकर लोगों ने अपने पास रक्खा है। जीव जन्तुओं की भी मूर्तियां कैलाश में बहुत हैं। कितनेही सिंह और हाथी, भारत की १२०० वर्ष की पुरानी शिल्पकला के उत्कर्ष का, स्मरण करा रहे हैं। मन्दिर के गोपुर के ऊपर जो खर्वाकार बौनों की मूर्तियां शङ्ख बजाते हुए बनाई गई हैं, वे बड़ी ही कौतुकावह हैं।

कैलाश के पासही लङ्केश्वर नामक मन्दिर है। बर्ज्यस साहब ने इसके खम्भों की बड़ी बड़ाई की है। वे उनको बहुत सुन्दर और बहुत मज़बूत बतलाते हैं। उनके चित्र से भी यह बात साबित होती है। इस

मन्दिर की कोई कोई मूर्तियां कैलाश की मूर्तियों की भी अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। उनके गढ़ने में शिल्पियों ने अपने कौशल की सीमा का अन्त कर दिया है। बड़ी सूक्ष्मता और सफ़ाई के साथ वे निर्म्मित हुई हैं। शङ्कर का ताण्डव नृत्य, वराह का पृथ्वी-उत्तोलन, पुत्र और पत्नी-युग्म के साथ सूर्य का उदय—ये सब दृश्य बहुतही अवलोकनीय हैं। उमा और गङ्गा, तथा ब्रह्मा और विष्णु आदि की भी बहुत सी मूर्तियां इसमें हैं। खेद है, मुसल्मानों ने इस मन्दिर को कई जगह छिन्न भिन्न कर डाला है।

रामेश्वर नामक गुफ़ा-मन्दिर इसलिए प्रसिद्ध है कि उसके अग्रभाग में बहुत बड़ी कारीगरी की गई है। वहां पर जो काम है, यलोरा के समग्र मन्दिर-समुदाय से अच्छा है। इसके चारों ओर अनेक प्रकार के पशुओं की जो मूर्तियां हैं उनमें हाथियों को प्रधानता है। चामुण्डा, इन्द्राणी, वाराही, लक्ष्मी, कौमारी, माहेश्वरी और ब्राह्मी इन सप्त-मातृकाओं की मूर्तियां इस मन्दिर में देखने लायक़ हैं। इनके सिवाय कार्तिकेय, गणेश और महाकाल आदि की भी प्रतिमाओं ने रामेश्वर की शोभा बढ़ाई है।

रामेश्वर के पासही नीलकण्ठ का मन्दिर है। सप्त-मातृ, गणपति, शिव और गङ्गा की मूर्तियां इसमें प्रधान हैं। इसका नन्दि-मण्डप कुछ उजाड़ दशा में है।

सूरेश्वर-मन्दिर का दूसरा नाम कुम्हार-वाड़ा है। यह मन्दिर बड़ा है। इसमें कई दालानें हैं। इसमें रथारूढ़ सूर्य की एक विशाल मूर्ति है। इसीसे इसका नाम सूरेश्वर है। सूर्य का एक नाम सूर भी है। इसके खम्भों में ब्रैकेट भी हैं। इन ब्रैकेटों के सामने एक पुरुष और एक स्त्री की उड़ती हुई प्रतिमायें हैं।

धुमार लेन अथवा सीता की चावड़ी यलोरा के हिन्दू-मन्दिरों में सबसे अन्तिम मन्दिर है। इसके भीतर विशाल खम्भों को देखकर बड़ाही आश्चर्य होता है। उत्तर की ओर यह छोर में है। यलिफंटा टापू, जो बम्बई के पास है, वहां भी एक गुफ़ा-मन्दिर ऐसाही है। जान पड़ता है यह उसकी नक़ल है। यह बहुत बड़ा मन्दिर है। यह १४८ फ़ुट चौड़ा और १४९ फ़ुट गहरा है। इसमें और और पौराणिक दृश्यों के सिवाय शिव-पार्वती के विवाह का दृश्य विशेष वर्णनीय है। उमा और महेश्वर बायें हाथ में कमल-पुष्प लिये हुए विवाह-मण्डप में बैठे हैं। कुछ नीचे, दाहिनी तरफ़, घुटना टेके हुए त्रिशिरा ब्रह्मा, अग्नि के पास पुरोहित का काम कर रहे हैं। फूल और नारियल लिये हुए, बाईं तरफ़, मेना और हिमवान् कन्यादान के लिए प्रस्तुत हैं। ऊपर की ओर देवी और देवता मण्डप को सुशोभित कर रहे हैं। विष्णु गरुड़ पर हैं; यम भैंसे पर हैं; वायु हिरन पर हैं; अग्नि बकरे पर हैं। दाहनी तरफ़ ऐरावत पर इन्द्र और मकर पर निऋति हैं।

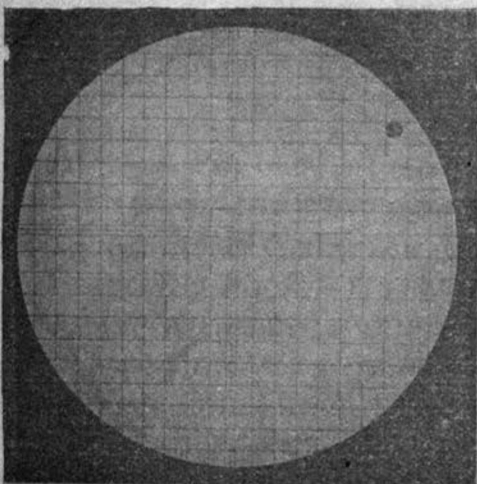
इस मन्दिर में वीरभद्र की एक मूर्ति बहुतही विशाल और भयावनी है।

शुक्र।

१—यह ग्रह, अपनी ऋतु में, सायङ्काल के कुछ ही बाद पहले पश्चिम में देख पड़ता है। फिर क्रमशः इसकी दूरी सूर्य्य से बढ़ती जाती है, अर्थात् अपने उदय होने के स्थान से विशेष पूर्व की ओर दिखाई देता है। यह बात तब तक होती है जब तक कि यह ग्रह सूर्य्य से ४७° अंश दूर नहीं हट जाता है, अर्थात् जब तक हमलोगों की आंख के पास यहां से सूर्य्य और शुक्र को मिलानेवाली रेखाओं से ४७° अंश का कोण नहीं बनता है। अनन्तर यह ग्रह फिर सूर्य्य की ओर जाता हुआ मालूम होता है; और कुछ काल में सूर्य्य की अत्यन्त समीपता से अस्त हो जाता है। थोड़े ही दिनों के बाद पूर्व में सूर्य्योदय के कुछ ही पहले यह देख पड़ता है; और क्रमशः सूर्य्य से अधिक पहले देख पड़ने लगता है। यह बात तब तक देखी जाती है जब तक वह फिर सूर्य्य से ४७° अंश दूर नहीं चला जाता। अनन्तर

वह पुनः सूर्य्य की ओर जाता हुआ देख पड़ता है, और कुछ दिन उसकी ओट में रह कर पूर्व में अस्त सा हो जाता है। फिर पूर्ववत् यह सायङ्काल के समय पश्चिम में उदय होता है। इसी तरह यह ग्रह वारंवार सूर्य्य की एक ओर से दूसरी ओर जाता हुआ देख पड़ता है। इसका कारण क्या है?

२—जब यह ग्रह सूर्य्य से अपनी अत्यन्त दूरी पर, अर्थात् ४७° अंश पर, हो जाता है तब इसकी गति उस समय से मन्द जान पड़ती है, जिस समय यह सूर्य्य के सन्निकट रहता है। दूर-दर्शक-यन्त्र (Telescope) से यह भी देख पड़ता है कि जिस समय यह सूर्य्य से अत्यन्त दूर हो जाता है उस समय शुक्लाष्टमी के चन्द्रमा की नाईं अर्द्ध उदित जान पड़ता है। कभी कभी यह पूरे तौर से पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आ जाता है, जिसको संस्कृत में सूर्य्य के साथ युति, उल्लेख, या समागम कहते हैं। उस



समय यह ग्रह सूर्य्य के बिम्ब में एक काला धब्बा सा देख पड़ता है। ऊपर का चित्र देखिये। वस्तुतः यह सूर्य्य के साथ युक्त नहीं हो जाता, केवल युक्त सा जान पड़ता है। यथा—

> उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते।
> युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ॥ १८ ॥
>
> सूर्य्यसिद्धान्त, ७ अध्याय।

अर्थ—ताराओं के परस्पर स्पर्श को उल्लेख कहते हैं; बिम्ब भेद होने को भेदयुद्ध कहते हैं। परस्पर की किरण मिल जाने को अंशुविमर्द कहते हैं ॥ १८ ॥

३—इन कारणों से यह स्थिर किया गया है, कि यह ग्रह पर-प्रकाशित खगोल है, जो सूर्य्य के चारों ओर २२४ दिन में परिक्रमा कर आता है। सूर्य्य तारागणों के मध्य घूमता हुआ जान पड़ता है। और यह ग्रह इस विषय में सूर्य्य का साथ देता हुआ सा प्रतीत होता है। इस अवस्था में वह कभी सूर्य्य के पश्चिम और कभी पूर्व में दिखाई देता है; किन्तु उससे ४७° से दूर जाते हुए वह कभी नहीं दिखाई दिया।

४—पृथ्वी की कक्षा (orbit), अर्थात् वह मार्ग जिससे पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है, गोल है। क्योंकि, सूर्य्यबिम्ब के व्यास का कोण, जो हमलोगों के नेत्र के पास बनता है, हर ऋतु में, क्या जाड़ा क्या गर्मी, वस्तुतः समान होता है। अर्थात् सूर्य्य हमलोगों को, हर ऋतु में, तुल्य बिम्ब का दिखलाई देता है। यदि वह किसी ऋतु में छोटा, और किसी में बड़ा दिखलाई देता, तो यह सिद्ध होता, कि वह कभी हम लोगों के समीप, और कभी दूर चला जाता है। ऐसा न होने से यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा वस्तुतः वृत्ताकार मार्ग में करती है। यह मार्ग वृत्त से थोड़ा विभिन्न होने से वृत्ताभ कहलाता है। देखने से यह भी विदित है, कि पृथ्वी की गति सर्वदा एकसी रहती है; अर्थात् वह अपनी परिक्रमा में कभी मन्द कभी तीव्र गति से नहीं चलती।

५—पूर्वोक्त प्रकार से जब शुक्र की व्योमकक्षा का विचार किया जाता है, तब वह भी पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त की तरह वस्तुतः वृत्ताकार ही पाया जाता है। उसकी भी गति, पृथ्वी की गति की तरह, साधारणतः एकसी रहती है।

६—चित्र [१] से शुक्र की गति का और भी ठीक बोध होगा।

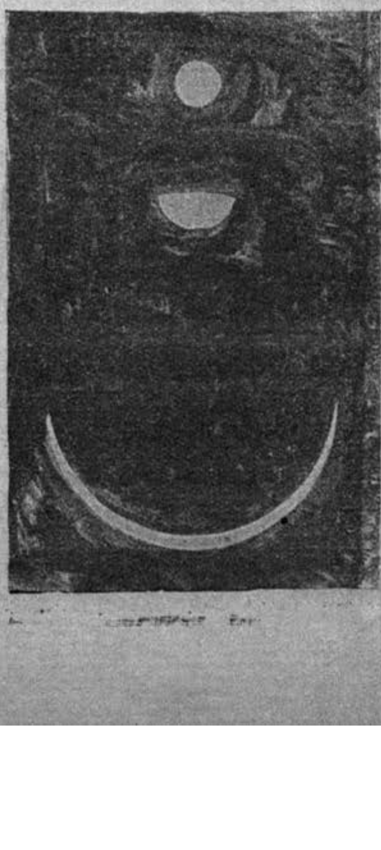
कल्पना करो, कि अ श व ग शुक्र की व्योमकक्षा, तथा ज प च पृथ्वी की व्योम कक्षा, अर्थात् क्रान्तिवृत्त हैं, और मध्य में स सूर्य्य है।

मान लो कि पृथ्वी अपनी कक्षा के प स्थान पर है; और शुक्र श स्थान से तीर की ओर जा रहा है। ज से ज द शुक्र के कक्षावृत्त की सम्पात रेखा खींचो। इसलिए कि श स्थान से शुक्र ज द सम्पात रेखा की ओर आ रहा है, प अर्थात् पृथ्वी पर के देखनेवाले को शुक्र, सूर्य्य से दूर जाता हुआ देख पड़ेगा; क्योंकि श ज स कोण क्रमशः बढ़ता जायगा। ज्यों ज्यों शुक्र द के समीप आवेगा त्यों त्यों वह सूर्य्य से दूर जाता हुआ जान पड़ैगा। इस गति को संस्कृत में शुक्र की वक्रगति कहते हैं; क्योंकि, आकाश में शुक्र, चन्द्र, बुध, इत्यादि को छोड़ कर जितने नक्षत्र देखने में आते हैं, सब सूर्य्य की ओर जाते हुए देख पड़ते हैं।

जब शुक्र द स्थान पर पहुँच जावैगा तब वह सूर्य्य से अत्यन्त दूर हो जावैगा, अर्थात् द ज स कोण ४७° अंश का होवैगा। जब इसके आगे शुक्र फिर बढ़ेगा तब सूर्य्य के समीप जाता हुआ वह देख पड़ैगा; और अ के पास वह सूर्य्य के अत्यन्त समीप पहुंच कर, उसके और पृथ्वी के मध्य में होने के कारण अस्त सा होगया जान पड़ैगा। जब वह आगे बढ़ते हुए क पर पहुंचेगा, जो कि ज से शुक्र की व्योमकक्षा का दूसरा सम्पात विन्दु है, तब वहां वह सूर्य्य से फिर अत्यन्त दूर देख पड़ैगा। पश्चात्, फिर वह सूर्य्य के समीप जाता हुआ दिखाई देगा, और व पर पहुंच कर सूर्य्य के पीछे उसके अत्यन्त समीप हो जायगा। कुछ दिनों में वह पुनः श पर पहुंचकर अपनी एक परिक्रमा पूरी करेगा। इस प्रकार सूर्य्य की परिक्रमा करते हुए शुक्र बिना किसी यन्त्र की सहायता के देखा जाता है।

७—दूरदर्शक यन्त्र से शुक्र, जो चन्द्रमा के समान कटा दिखलाई देता है, उसका कारण यह है, कि जब शुक्र श पर रहता है, तब उसका वह भाग जो सूर्य्य के सम्मुख है, उजेला और शेष भाग अंधेरा रहता है। और जब कोई दर्शक उसको उस समय पृथ्वी पर से देखेगा, तब उसको शुक्र के उस भाग से भिन्न भाग दिखलाई देगा, जो सूर्य्य के सम्मुख है; अर्थात् उसे कुछ तो वह भाग दिखलाई देगा जो स के सामने है, और कुछ वह जो उसके सामने नहीं है। जितना भाग यहां वालों को सूर्य्य के सामने का दिखाई पड़ेगा, उतने में उजेला, और शेष में अन्धेरा रहेगा। अतएव दर्शक को उस समय चन्द्रमा के आकार का स्मरण हो आवेगा, क्योंकि इस विषय में शुक्र, चन्द्रमा की सी अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

ज्यों ज्यों शुक्र इस भूतल की ओर आता हुआ देख पड़ता है, त्यों त्यों उसका कम उजेला भाग यहां के निवासियों को देख पड़ता है; और क्रम क्रम से उसका बहुतही पतला भाग, बालचन्द्रवत् देख पड़ने लगता है। और जब वह ठीक अ पर आ जायगा तब उसका बिलकुल अन्धेरा भाग ज अर्थात् इस भूतल वासियों के सामने पड़ेगा, अर्थात् उनके लिए शुक्रास्त हो जावैगा। यहां पर हम शुक्र के पूर्ण, आधे और प्रतिपच्चन्द्र तुल्य स्वरूपों का



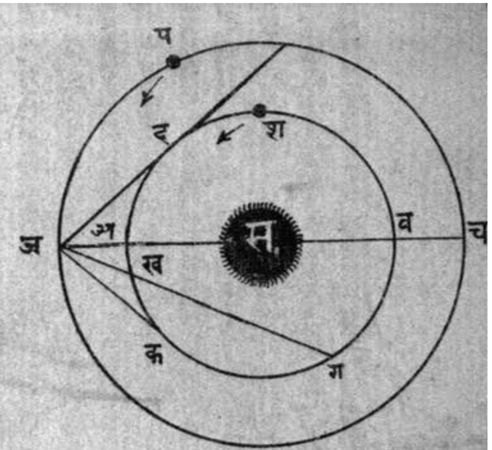
एक चित्र देते हैं। कभी कभी अस्त दशा में भी शुक्र का दर्शन हो जाता है। यह ऊपर कहा जा चुका है कि शुक्र की कक्षा पूर्णतः उसी धरातल में है जिसमें पृथ्वी की है; किन्तु यह यथार्थ में ठीक नहीं है। क्योंकि, ये दोनों कक्षावृत्त, सूर्य्य के सम्बन्ध से, एक दूसरे के साथ एक कोण बनाते हैं। यदि ये दोनों कक्षा वृत्त और सूर्य्य ठीक एक सीध में होते तो हर शुक्रास्त में पृथ्वी-तल-वासियों को शुक्र, सूर्य्य के बिम्ब में एक काले धब्बे के सदृश देख पड़ता। किन्तु इन दोनों व्योमकक्षाओं के एकही धरातल में न रहने से, जब शुक्र अ स्थान पर होता है, तब कभी वह ज स सीधी रेखा के ऊपर और कभी नीचे पड़ जाता है। परन्तु जब कभी शुक्र पूरी तौर से ज स सीधी रेखा में आ जाता है उस समय वह सूर्य्य के बिम्ब में एक धब्बा सा देख पड़ता है। इसी दृश्य को शुक्र की सूर्य्य के साथ युति अथवा उल्लेख कहते हैं। यह युति १८७४ और १८८२ में हुई थी। अब २००४ और २०१२ ई० में फिर होगी।

अ से आगे बढ़ने पर शुक्र फिर बालचन्द्रमा के समान कुछ कुछ देख पड़ने लगता है। यदि ज से एक वृत्तखण्डिनी रेखा ज ख ग खींचें, तो ख और ग पर शुक्र एकही सा देख पड़ेगा; अन्तर केवल इतनाही होगा, कि ख स्थान पर शुक्र सूर्य्य से दूर जाता हुआ, और ग पर फिर सूर्य्य की ओर आता हुआ देख पड़ेगा। किन्तु, यदि हम दूरदर्शक यन्त्र से देखें, तो इन दोनों स्थानों पर शुक्र में विशेष अन्तर देख पड़ेगा। अर्थात् ख पर वह नूतन-चन्द्रवत् पतला, और ग पर पूर्ण-चन्द्रवत् पूरा देख पड़ेगा। सूर्य्य की अत्यन्त समीपता तथा उसके कठिन प्रकाश से व स्थान पर शुक्र अस्तही सा रहता है।

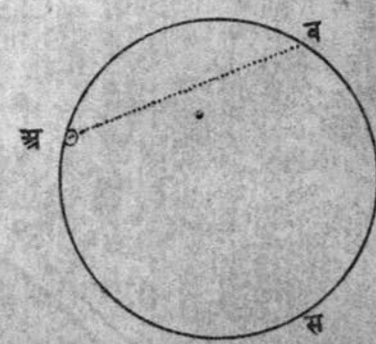
८—संस्कृत ग्रन्थों में भी इस विषय का वर्णन है। सूर्य्यसिद्धान्त के नवें अध्याय में इस विषय पर बहुत कुछ कहा गया है।

९—अब संक्षेप से यह विचार करना है, कि पृथ्वी के, अपनी व्योमकक्षा में, सूर्य्य की परिक्रमा करने के कारण शुक्र की गति में क्या अन्तर पड़ेगा। कल्पना करो, कि पृथ्वी और शुक्र के कक्षावृत्त एक ही धरातल में हैं। इस समय, केवल शुक्र और सूर्य्य-सम्बन्धीय स्थान का विचार किया जा रहा है। इसका निश्चय सदैव उस कोण के माप से हो सकता है जो शुक्र और सूर्य्य को मिलाने-वाली सीधी रेखा के सामने, पृथ्वी पर के दर्शक के नेत्र के पास, बनता है। कल्पना करो, कि पृथ्वी और शुक्र दोनों के कक्षावृत्त सूर्य्य के चारों ओर तीव्र गति से घुमाये जा रहे हैं। तथा इस घुमाव की धुरी कक्षावृत्तों के धरातल पर लम्बरूप है। और यह भी मानलो कि पृथ्वी और शुक्र अपनी अपनी गति के सिवाय अपनी अपनी कक्षावृत्तों की भी गति धारण किये हैं। तो यह स्वतः सिद्ध है कि कक्षावृत्तों के घुमाव के कारण शुक्र और सूर्य्य सम्बन्धीय स्थानों में कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। उदाहरण के लिये, यदि दो मनुष्य किसी चलती या ठहरी हुई रेल गाड़ी की बाहरी पटरी पर चलें, तो उनके स्थानों में गाड़ी के चलने या ठहरने से कुछ अन्तर न पड़ेगा।

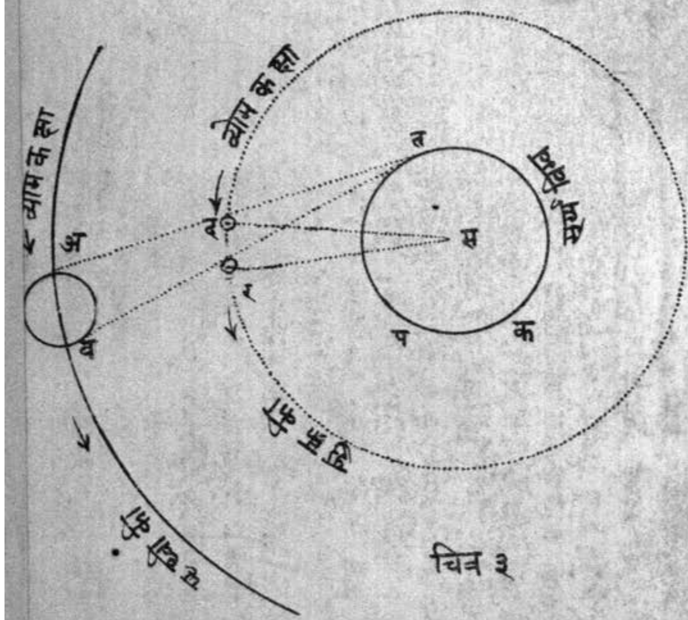
सबूत के लिये मान लो, कि वह गति जो कक्षा वृत्तों को दी गई है उसी गति के तुल्य है, जो सूर्य्य की परिक्रमा में पृथ्वी धारण किये है; किन्तु वह गति पृथ्वी की गति की उलटी दिशा में है। शुक्र और पृथ्वी सम्बन्धीय गति में तो कुछ अन्तर, कक्षावृत्तों के गति के कारण, पड़ नहीं सकता; किन्तु कक्षावृत्त की गति उलटी दिशा में होने से पृथ्वी की गति शून्य सी बोध होगी। अब यह विचारणीय है, कि इस गति का शुक्र की गति पर क्या असर पड़ेगा। इसलिए कि शुक्र सूर्य्य की परिक्रमा २२४·७ दिन में करता है, अर्थात् ३६०° अंश के कक्षावृत्त को २२४·७ दिन में पूर्ण करता है, यह ग्रह एक दिन में अपनी कक्षावृत्त के $\frac{३६०°}{२२४·७}$ अंश का कोण बनाता है। परन्तु पृथ्वी की गति के अवरोध के कारण, अर्थात् शुक्र के कक्षावृत्त में



चित्र १



चित्र २



चित्र ३

पृथ्वी की गति के तुल्य उलटी गति होने के कारण, शुक्र एक दिन में $\frac{३६०^\circ}{३६५\cdot२६}$ अंश अपने कक्षावृत्त से हटा हुआ सा बोध होगा। इसलिये शुक्र पृथ्वी से एक दिन में $\frac{३६०^\circ}{२२४\cdot७} - \frac{३६०^\circ}{३६५\cdot२६}$ अंश का कोण प्राप्त करेगा। इस कारण पृथ्वी पर के दर्शक को शुक्र की परिक्रमा

$$\frac{३६०^\circ}{\frac{३६०^\circ}{२२४\cdot७} - \frac{३६०^\circ}{३६५\cdot२६}} = ५८३\cdot२$$

अर्थात् ५८४ दिन में होती हुई मालूम होगी। इसलिए पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण शुक्र की गति का समय विशेष होता हुआ ज्ञान पड़ता है; किन्तु और किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता।

संस्कृत में ग्रह-लाघव ग्रन्थ के अस्तोदयाधिकार के १७वें श्लोक तथा पञ्चतारा-स्पष्टी-करणाधिकार के १९वें श्लोक में भी यही बात कही गई है।

१०—अब इस बात का विचार करना है कि किस प्रकार, इस ग्रह की सहायता से, हमलोग, पृथ्वी से सूर्य्य की दूरी तथा सूर्य्य का व्यास जान सकते हैं। यह विषय बहुत कठिन है; इसके जानने के लिए गणित तथा ज्योतिष की बहुत सूक्ष्म बातों का विचार करना पड़ता है। इसलिए यहां पर सरस्वती के पाठकों को हम दोही एक बात कह कर सन्तोष करेंगे।

११—शुक्र की सूर्य्य के साथ युति अर्थात् समागम का वर्णन पहले किया जा चुका है। उस समय यह ग्रह पृथ्वी और सूर्य्य के मध्य में आजाता है; तब भूतलवासियों को यह ग्रह सूर्य्य के बिम्ब में एक काला धब्बा सा दिखलाई देता है। कल्पना करो कि स अ व वृत्त सूर्य्य का दृश्य बिम्ब है [चित्र २] और उसके अ बिन्दु पर शुक्र युत होकर अ व सीधी रेखा की ओर, सूर्य्य बिम्ब में जाकर व पर उससे बाहर होता हुआ देख पड़ता है। शुक्र को, इस प्रकार, सूर्य्य के बिम्ब को पार करने में ४ घण्टे लगते हैं। जब वह पूर्ण तौर पर सूर्य्य के बिम्ब के भीतर रहता है उस समय शुक्र की सूर्य्य के साथ प्रथम युति कही जाती है। शुक्र के प्रथम समागम के समय का निश्चय करके पृथ्वी से सूर्य्य की दूरी का विचार किया जा सकता है।

१२—मान लो कि प क त वृत्त सूर्य्य का बिम्ब है जिसका केन्द्र स है; तथा अ व पृथ्वी और द और र शुक्र के दो स्थान उसकी व्योमकक्षा में हैं। [चित्र ३ देखो]

कल्पना करो कि अ त सीधी रेखा, सूर्य्य और पृथ्वी की उभयनिष्ट संपात रेखा खींची गई है; तथा व त सीधी रेखा पृथ्वी के व बिन्दु से पृथ्वी और सूर्य्य की उभयनिष्ट संपात रेखा मिलाई गई है। दूसरा त बिन्दु यदि प्रथम त बिन्दु पर नहीं है तो उसके इतना समीप है कि उसका अन्तर पृथ्वी पर से गिनने की तादृश ज़रूरत नहीं है। अ और व से जाती हुई रेखा पृथ्वी की व्योमकक्षा का वृत्त, तथा द और र से जाती हुई रेखा शुक्र की व्योमकक्षा का वृत्त है। शुक्र और पृथ्वी दोनों तीर मार्ग की ओर भ्रमण कर रहे हैं। पृथ्वी की अपेक्षा शुक्र शीघ्रगामी है, इसलिए थोड़े ही काल के अनन्तर वह पृथ्वी के सामने अपनी कक्षा में द स्थान पर आ जायगा (सबूत की सरलता के लिये पृथ्वी और शुक्र के व्योमकक्षा के वृत्त एकही धरातल में मान लिये जाते हैं)। पृथ्वी के स्थान अ से जब शुक्र स्थान द पर देखा जायगा तो उसकी क्या दशा रहेगी। उस समय शुक्र, सूर्य्य के साथ प्रथम समागम की दशा में देख पड़ेगा। प्रथमही से अपनी घड़ी ठीक कर रखने से हमलोगों को शुक्र के प्रथम समागम का ठीक काल निश्चय हो जायगा।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि किस युक्ति से पृथ्वी अपनी व्योमकक्षा में स्थिर कल्पित की जासकती है। तथा यह भी कहा जा चुका है कि इससे शुक्र के पृथ्वी सम्बन्धी स्थान में कुछ अन्तर नहीं पड़ सकता। और वास्तव में यदि पृथ्वी स्थिर होती, और शुक्र की परिक्रमा का समय ५८४ दिन

होता, तो शुक्र की सूर्य-सम्बन्धी गति की दशा, पृथ्वी पर से देखने में वैसी ही होती जैसी कि अब है, जब पृथ्वी अपनी व्योमकक्षा की परिक्रमा ३६५ दिन में, और शुक्र २२४ दिन में करता है। अतएव कल्पना करो, कि पृथ्वी अपनी कक्षा में स्थिर तथा शुक्र पूर्वोक्त मन्दगति से भ्रमण कर रहा है।

अब मान लो कि शुक्र भ्रमण करता हुआ र स्थान पर पहुंच गया; इसलिए पृथ्वी पर व स्थान के रहनेवालों को शुक्र के प्रथम समागम का समय मालूम हो जायगा। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी के अ स्थान पर प्रथम समागम हुआ; और व पर अन्त समागम हुआ। इसमें कुछ न्यूनाधिक करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि जितने समय में शुक्र द से र पर आवेगा, उतने समय में, यद्यपि पृथ्वी एक स्थान पर स्थिर मानली गई है, तथापि उस समय उसी स्थान पर पृथ्वी अपनी दैनिक गति के कारण अपनी धुरी पर घूम जायगी। इसलिए शुक्र के अन्तिम समागम के देखे जाने का, पृथ्वी पर का स्थान, त स्थान से कुछ अन्तर पर होगा। इस विषय का पूरा वर्णन करना इस लेख में उचित नहीं। केवल इतना ही कहना बस है कि ज्योतिषी इस विषय को जानते हैं कि किस प्रकार इस अन्तर की गणना की जाती है।

अब यह समझ लो कि दो आदमी अ और व स्थानों पर अपनी अपनी घड़ी को शुद्ध करके सूर्य्य के साथ शुक्र के समागम के आरम्भ काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और यह भी मान लो कि इन दोनों स्थानों में तार द्वारा समाचार भेजा जा सकता है। इसलिए ज्योंही अ स्थान पर प्रथम समागम देख पड़ा, त्योंही तार द्वारा व स्थान को समाचार दिया गया। व पर के दर्शक ने अपनी घड़ी से यह जान लिया कि किस समय अ पर समागम हुआ और जब व पर समागम आरम्भ हुआ तब उस समय से और अ पर के समागम के समय का अन्तर उसको ठीक ठीक मालूम हो गया।

इस प्रकार हमलोगों को भली भांति विदित हो सकता है, कि शुक्र को द से र तक आने में कितना समय लगता है। हमको यह भी ज्ञात है कि शुक्र को अपनी कक्षा में पृथ्वी के सम्बन्ध से कितना समय पूरी परिक्रमा देने में लगता है। (अर्थात् ५८४ दिन) इससे सरलता पूर्वक त्रैराशिक की रीति से हमलोगों को द स र कोण का परिमाण ज्ञात हो सकता है।

सूर्य्य की त्रिज्या त स सूर्य्य की दूरी द स के हिसाब से बहुतही कम है। इससे यह कहना बहुत अशुद्ध नहीं हो सकता कि द त र कोण द स र कोण के तुल्य है।

अब अ त व समद्विबाहु त्रिभुज की अ व भुजा, जो पृथ्वी के अ और व स्थानों की दूरी है, तथा अ त व कोण, मालूम होने से पृथ्वी से सूर्य्य की अ त दूरी त्रिकोणमिति ग्रन्थ के सहारे से ज्ञात हो सकती है।

१३—बहुतही नये सिद्धान्त के अनुसार सूर्य्य की पृथ्वी-तल से मध्यम दूरी ९३०००००० मील गणना की गई है। किन्तु, ठीक दूरी, जाड़े के दिनों में, ९१०००००० मील, तथा गर्मी में ९४०००००० मील कही जाती है।

१४—उत्तम यन्त्रों से, तथा बहुत ध्यान पूर्वक देखने से, हम लोगों के नेत्र के पास का, सूर्य्य के बिम्ब के व्यास के सामने का, कोण १९.२४″ सेकण्ड पाया जाता है। इसलिए त्रिकोणमिति के सहारे सूर्य्य का व्यास ८८७००० मील अनुमान किया गया है।

शुक्र का व्यास ७,६६० मील है। यह व्यास पृथ्वी के व्यास से केवल २५८ मील कम है। सूर्य्य से शुक्र की मध्यम दूरी ६७,०००,००० मील है। एक सेकण्ड में उसका वेग लगभग २२ मील है। इस हिसाब से एक घण्टे में वह ८०,००० मील चलता है !!! २२४ दिन कुछ घण्टों में वह सूर्य्य की प्रदक्षिणा कर आता है और २३ घण्टे २६ मिनट में वह अपनी कील पर एक बार घूम जाता है। यदि पृथ्वी की मात्रा १०० मानें तो शुक्र की $\frac{७७}{१००}$ मानना

पड़ेगा। वह पृथ्वी से कुछ छोटा है। सूर्य्य के सामने तो वह कोई चीज़ही नहीं। यदि ४,००,००० से भी अधिक शुक्र इकट्ठे किये जायं तो वे कहीं सूर्य्य की समता कर सकें !!!

जीतनसिंह।

देशव्यापक भाषा।

इस विषय का लेख सरस्वती, संख्या ११, भाग ४, में बड़ी योग्यता से समाप्त हुआ है। वास्तव में देश की उन्नति उसकी भाषा की उन्नति पर आश्रित है। बिना सद्विचारों के हृदयाङ्कित हुए किसी देश के मनुष्यों ने उच्चतम पद प्राप्त नहीं किया। और सद्विचारों का प्रकाश केवल भाषा के द्वारा हो सकता है। एक योग्य पुरुष के लेखों के द्वारा, अनेक पुरुष शिक्षा लाभ कर सकते हैं। इस प्रकार एक के विचार दूसरों के हृदयों में प्रवेश कर सकते हैं। लेखक महाशय ने देश भाषा की उन्नति के उपायों के साथ यह भी सिद्ध किया है कि कौन लिपि उत्तम और माननीय होगी और उस लिपि के प्रयोग की बड़ी उत्तम युक्ति यह लिखी है कि "जो पुस्तकें, जो काग़ज़ात, जो दस्तावेज़ें, इस समय, बँगला, गुजराती और तामील आदि भाषा की लिपियों में हैं उनको वैसे ही रहने देना चाहिये। पुस्तकें जब दुबारा छपें तब उनकी लिपि हिन्दी कर देने से काम निकल सकता है"। इस युक्ति के अनुसरण से हमको पूर्णतः सम्भावना है, कि अवश्य एक दिन वह हो सकता है, जब इस देश की एक ही देशव्यापक भाषा हो जाय। हिन्दी लिपि सर्व-गुण-विशिष्ट, सरल, सुन्दर और निर्दोष है। इसमें किसीको कुछ सन्देह नहीं हो सकता। फ़ारसी, अँगरेज़ी, अरबी, तैलङ्गी, तामील आदि विदेशी लिपियां किसी प्रकार इस देश में सर्व-व्यापक भाषा लिखने के लिए योग्य नहीं। गुजराती, बंगाली, लिपियां भी इस महत्व की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं; क्योंकि उनके अक्षर न तो ऐसे सरल और स्पष्ट हैं; और न वे देखने में उत्तम प्रतीत होते हैं। इसके सिवा असल से नक़ल को कभी समता भी नहीं मिली; महत्व तो एक ओर रहा। अब यह विचार करना चाहिये कि किस सरल रीति से यह उत्तम अभीष्ट सफलता को प्राप्त हो सकता है। यह एक प्रकार असम्भव जान पड़ता है, कि वे लोग, जो अन्यान्य भाषाओं और अन्यान्य लिपियों के वशीभूत हो रहे हैं सहसा हमारी बात को मानकर अपनी चाल को बदल देंगे। अतएव हमको ही इसमें पहले क़दम बढ़ाना चाहिये। यह बात इस रीति से हो सकती है, कि अन्यान्य भाषाओं की उत्तम पुस्तकें केवल लिपि-भेद करके, देवनागरी लिपि में छापें; और ऐसी पुस्तकों का पहले उनलोगों में प्रचार हो जो इन अक्षरों को भली प्रकार जानते हैं। इन पुस्तकों में कठिन शब्दों की टिप्पणी कर दी जाय। इससे बड़ा लाभ यह होगा कि उन भाषाओं से हमलोग (जिनकी मातृभाषा हिन्दी है) सरलता से परिचित हो जांयगे। और यह एक बड़ा भारी लाभ होगा। और, अन्यान्य भाषाओं के बहुत से नवीन शब्द भी हमारी भाषा की कोष-वृद्धि करेंगे। दूसरा लाभ जो हम इससे समझते हैं वह यह होगा कि जब दूसरी भाषावाले अपनी भाषा की कोई उत्तम और प्रचलित पुस्तक इस लिपि में देखेंगे तो वे उसे अवश्य लेंगे। क्योंकि एक नए प्रकार के अक्षरों को, सरलता से जानलेने के अभिप्राय से भी, विद्या-व्यसनी विद्वान् ऐसी पुस्तकें पढ़ते हैं। इस प्रकार इन अक्षरों से परिचित होने के साथ ही इस लिपि की उत्तमता भी उनके हृदयाङ्कित हो जायगी। और, फिर, उनकी रुचि बढ़ने से नागरी लिपि में छपे हुए हिन्दी भाषा के ग्रन्थों को भी वे देखेंगे। इसी प्रकार इस भाषा में प्रवेश करके, कुछ दिनों में, वे हिन्दी अच्छी तरह जान जांयगे। उर्दू, बँगला और गुजराती की ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनका देवनागरी लिपि में छापाजाना उपयोगी हो सकता है। इस विषय पर विद्वानों को

अधिक ध्यान देना चाहिये; श्रैार यह कदापि शङ्का न करनी चाहिये कि अन्यान्य भाषाओं के शब्द मिल जाने से यह भाषा दूषित हो जायगी,-भाषा सदैव मनुष्यों की अनुगामिनी होती है। जब अनेक रूप, गुण, जाति के लोग इस देश में एक साथ निवास करने लगे, तब भाषा की भी वही चाल अवश्य होगी जिससे कि, सब, एक दूसरे से मिल जुलकर परस्पर सम्भाषण कर सकें।

नानकचन्द।

देवनागरी वर्णमाला।

कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज के संस्कृताध्यापक पण्डित सतीशचन्द्र आचार्य्य विद्याभूषण, एम० ए०, ने एक उत्तम लेख वर्णमाला के इतिहास (History of Alphabet) पर लिखा है जो "कलकत्ता यूनीवरसिटी मैगज़ीन" में प्रकाशित हुआ है। लेख लम्बा चैाड़ा है। उसमें देवनागरी के विषय में भी उन्होंने कुछ लिखा है, जिसका सारांश मैं यहां लिखता हूं। आशा है कि हिन्दी के रसिक इसपर अपनी अपनी सम्मति प्रकाशित करेंगे।

"नागरी अथवा देवनागरी भारतवर्ष की वर्णमालाओं में सबसे प्रधान है। किसी किसीका कथन है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों में यह अक्षर प्रचलित था; इसी कारण, इसका नाम नागरी पड़ा। किसी किसी का मत है, कि पश्चिमी भारत में ईसा को प्रथम शताब्दी में, रुद्र दम आदि कई ऐसे राजा हुए जिनको लोग "नागर" भी कहते थे; अतएव नागरी नाम उन्होंके नामानुसार पड़ा। किन्तु, हमारी समझ में देवनागरी नाम इस कारण पड़ा, कि यह अक्षर देव-नगर (काशी) में प्रचलित था। कविवर श्रीहर्ष ने अपने नैषधचरित में लिखा है कि काशी देव-नगरी है जो स्वर्ग में स्थित है, पृथ्वी पर नहीं। काशी कान्यकुब्जों की राजधानी थी। बारहवीं शताब्दी में जयचन्द कान्यकुब्ज का राजा था; उसकी राजधानी काशी ही थी।

"कई विद्वानों की सम्मति है कि देवनागरी अक्षर गुप्त की वर्णमाला से निकला है। गुप्त की वर्णमाला अशोक की वर्णमाला की एक शाखा है। हम इससे सहमत नहीं हैं। अशोक की वर्णमाला इतनी सीधी है कि ऐसे पेचदार * अक्षर उससे कदापि नहीं निकल सकते। अशोक, गुप्त श्रैार देवनागरी वर्णमालाओं में देवनागरी वर्णमाला उन दोनों से क्लिष्ट है। यह हो सकता है कि अशोक श्रैार गुप्त के समय की किसी वर्णमाला का यह रूपान्तर हो।

"उड़िया, तेलगू श्रैार बंगाली आदि वर्णमालाओं की भांति देवनागरी भी प्रान्तिक-वर्णमाला थी। देवनागरी का शिलालेख ईसा की १०वीं शताब्दी के पश्चात् तक का मिला है। इसके पूर्व का कोई शिलालेख, जहां तक हम जानते हैं, अब तक नहीं मिला। बावर की पोथी, जिसको डाकृर हार्नले ने सम्पादन किया था, यह प्रगट करती है कि सन् ४५० ई० में देवनागरी अक्षर भद्दी अवस्था में था। गत कई शताब्दियों में देवनागरी ने आश्चर्यदायक उन्नति की है। कान्यकुब्ज राजाओं की कृपादृष्टि के कारण ही देवनागरी वर्णमाला ने दूसरी सहयोगिनी वर्णमालाओं से अधिक श्रेष्ठता प्राप्त की। काशी में जो पण्डित पढ़ने आते थे वे वहां देवनागरी सीखते थे, श्रैार उन्होंके द्वारा भिन्न भिन्न प्रान्तों में इसका प्रचार हुआ।

"इस प्रकार यह वर्णमाला पण्डित-समाज में धीरे धीरे फैल गई। आज कल यूरोपीय विद्वान् संस्कृत की पुस्तकों को इसी अक्षर में छपाते हैं, जिसके कारण एक प्रकार से यह भारतवर्ष की उदाहरणरूप वर्णमाला मान ली गई है। पण्डित लोग भी आज कल संस्कृत की पुस्तकों को इसी में छपाने लगे हैं; यद्यपि कुछ काल पहले बँगला श्रैार तामील आदि लिपि में भी संस्कृत की पुस्तकें

* हम नहीं कह सकते कि विद्याभूषण जी का यह कथन कहां तक सत्य है। देवनागरी वर्णमाला की सरलता में किसी को सन्देह नहीं है। —सं० पु० म०।

अधिकता से लिखी जाती थीं। बम्बई, मद्रास और पञ्जाब के विश्वविद्यालयों में यह नियम है, कि संस्कृत के प्रश्नों का उत्तर देवनागरी ही अक्षरों में लिखना चाहिये। इस कारण से वहां के सब संस्कृत-पढ़नेवाले विद्यार्थियों को देवनागरी लिखना अवश्य सीखना पड़ता है, जिससे इसका प्रचार और भी अधिक बढ़ गया है। और, यदि, कलकत्ता विश्वविद्यालय भी इस अक्षर को जारी कर दे* तो यह शीघ्रही सारे भारतवर्ष की वर्णमाला हो जाय। यह अत्यन्त आश्चर्य्य का विषय है† कि ब्रह्मा और सिलोन के लोग भी पाली की पुस्तकों को देवनागरी अक्षरों में छापने लगे हैं। गत ५० वर्षों में देवनागरी वर्णमाला ने बड़े वेग से उन्नति के शिखर की ओर यात्रा की है; और यदि यह कुछ दिन तक और भी इसी प्रकार चलती रही तो यह केवल भारतवर्ष ही में नहीं वरन् सम्पूर्ण एशिया में प्रचलित हो जायगी। यद्यपि देवनागरी पहले केवल एकही प्रान्त की वर्णमाला थी, किन्तु सम्भव है, कि थोड़े ही समय में हिन्दूमात्र की यह वर्णमाला हो जाय"।

यहां पर मैं अपनी सम्मति इस विषय पर अभी न प्रकाशित कर हिन्दी के रसिकों से प्रार्थना करता हूं और आशा रखता हूं कि इसपर अपनी अपनी सम्मति प्रकाश करके वे मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विद्याभूषण महाशय बँगला वर्णमाला के विषय में लिखते हैं कि "यद्यपि विद्वानों की सम्मति है कि वह देवनागरी ही से निकली है, तथापि हम यह कहने का साहस करते हैं कि बँगला देवनागरी के पहले की वर्णमाला है"। वह और भी लिखते हैं कि "तिब्बत की लाँटशा (Lantsha) वर्णमाला और जापान की होरीयूज़ी (Horiuzi) वर्णमाला, जो ईसा की सातवीं शताब्दी में विद्यमान थीं, बँगला वर्णमाला का रूपान्तर हैं। बाबर की पोथी देवनागरी और बँगला दोनों वर्णमालाओं से मिलती है। सुनते हैं बुध ने भी बँगला वर्णमाला सीखी थी। अतएव हम इस सिद्धान्त से सहमत नहीं कि बँगला लिपि देवनागरी से निकली है। हमारी राय में बँगला, देवनागरी और तिब्बत की वर्णमाला तीनों किसी एकही जड़ से उत्पन्न हुई हैं"।

विद्याभूषण महाशय का यह मत बहुतही अयुक्तिसङ्गत जान पड़ता है; परन्तु जब तक उसका सप्रमाण खण्डन न किया जाय तब तक उसके प्रतिकूल कुछ नहीं कहा जा सकता।

चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा।

पुराना सती-सम्वाद।

फ्रांस का रहनेवाला डाकृर बर्नियर नामक एक विद्वान् औरङ्गज़ेब के राज्य-काल में यहां सैर करने आया था। वह पैलेस्टाइन, सीरिया, टर्की, ईजिप्ट, फ़ारस और अरब होता हुआ १६५८ ईसवी में इस देश के सूरत बन्दर में पहुँचा। यहां आकर वह कोई १२ वर्ष देहली में रहा। इस बीच में उसने प्रायः सारे हिन्दुस्तान में भ्रमण किया। उस समय देहली में दानिशमन्द खां नामक सूबेदार था। वह औरङ्ज़ेब का वैदेशिक विभाग सम्बन्धी मन्त्री भी था। यह सूबेदार फ़ारस का निवासी था और बड़ा ही विद्या-व्यसनी था। औरङ्ज़ेब उसका बड़ा मान करता था। उसीके आश्रय में बर्नियर १२ वर्ष तक यहां रहा। उसने यहां फ़ारसी का भी अभ्यास किया था। दानिशमन्द खां को वह पाश्चात्य शरीर-शास्त्र (anatomy) और तत्व-विद्या सिखलाता था। देहली के अमीरों में उसका बड़ा आदर था। बादशाह के यहां तक वह चिकित्सा के लिए बुलाया जाता था। उसको ३००) रुपये मासिक वेतन दानिशमन्द खां के यहां से मिलता था; परन्तु, उस समय, उसने इस वेतन

---

* काशी नागरीप्रचारिणी सभा, आरा नागरीप्रचारिणी सभा, और अन्य हिन्दी के प्रेमियों को ऐसी चेष्टा करनी चाहिये जिसमें मद्रास, बम्बई और पञ्जाब की भांति कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी यह वर्णमाला जारी हो जाय। चौ० पु० प्र०।

† आश्चर्य्य क्यों? यह अक्षर ही ऐसा सरल है कि इसको प्रयोग करने में किसीको कठिनाई नहीं पड़ती। चौ० पु० प्र०।

को बहुत बड़ा वेतन माना था। बर्नियर ने औरङ्गज़ेब की निर्दयता, राज्य-लोलुपता, भेद-भक्ति और दम्भ-लाला का आँखों देखा वर्णन लिखा है। उसका उसके भाइयों के साथ युद्ध और क्रूरता के बर्ताव का भी बहुतही सजीव चित्र उसने खींचा है। बादशाह के दरबार का, उसके अधिकारियों का, उसकी सेना का, उसकी चढ़ाइयों का, हिन्दू और मुसल्मानों के धार्म्मिक विचारों का, उस समय की सामाजिक अवस्था का भी बहुतही अच्छा वृत्तान्त बर्नियर ने लिखा है। ये सब बातें, समय समय पर, स्वदेश को भेजे हुए डाक्टर साहब के पत्रों के साथ फ्रेञ्च भाषा में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं। उनका अंगरेज़ी अनुवाद भी छप गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से औरङ्गज़ेब के समय का बहुत कुछ सच्चा हाल मालूम होता है। पुस्तक बहुत ही मनोरञ्जक है और अनेक ऐतिहासिक बातों से परिपूर्ण है। उसमें बर्नियर ने सत्रहवीं शताब्दी में, सती होनेवाली स्त्रियों का प्रत्यक्ष देखा हुआ जो हाल लिखा है उसे, हम, यहां पर, उसी के मुख से सुनाते हैं।

"मेरे आग़ा दानिशमन्द ख़ां के यहां वेणीदास नामक एक कारकुन था। दो वर्ष तक बीमार रहकर वह मर गया। उसके शरीर के साथ उसकी स्त्री ने सती हो जाना चाहा। जब यह समाचार दानिशमन्द ख़ां को मिला तब उसने कई आदमियों को वेणीदास की विधवा के पास समझाने भेजा। परन्तु उसने किसीका कहना न माना; अपने छोटे छोटे दो बच्चों को छोड़ कर जल जाना ही उसने अच्छा समझा। इस पर ख़ां ने मुझे भेजा। मैं गया। वह विधवा अपने मृत पति के पैरों के पास बैठी थी; बाल बिखरे हुए थे; चेहरा ज़र्द था। पासही पाँच सात ब्राह्मण ताली बजा रहे थे और ज़ोर ज़ोर से कुछ गा रहे थे। विधवा में शोक अथवा सन्ताप के कोई विशेष चिन्ह न थे। मैंने कहा मुझे दानिशमन्द ख़ां ने भेजा है, और कहा है कि तुमको अपने लड़कों की ओर देखकर जीती रहना चाहिए। यदि तुम दानिशमन्द ख़ां का कहना मानोगी तो तुम्हारे दोनों लड़कों को पेन्शन मिल जायगी और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुमको सती होने के लिए कोई मजबूर न कर सकैगा। तुमको अपने पति के प्रेम से अपने छोटे छोटे बच्चों पर अधिक प्रेम होना चाहिए। ऐसी दशा में सती न होना तुम्हारे लिए कोई कलङ्क की बात नहीं। इस प्रकार, जहां तक मुझसे बना, मैंने उसे समझाया; परन्तु उसने मेरी एक न मानी। उसने कहा कि यदि उसे कोई सती होने से रोकैगा तो वह दीवार पर सिर फोड़ कर अपना भेजा बाहर निकाल देगी। यह सुनकर मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने कहा, अच्छी बात है; सिर फोड़ो। परन्तु, पाषाण-हृदयी मा! सती होने के पहले तू इन दोनों बच्चों की गरदन काटकर अपनी चिता पर रखले। क्योंकि मैं अभी दानिशमन्द ख़ां के पास जाकर इनकी पेन्शन का हुकम मनसूख करा देता हूं। ऐसा होने से, तेरे जल जाने पर, ये अवश्यही भूखों मर जावैंगे। क्रोध में आकर, ऊंचे स्वर से जब मैं यह कह चुका, तब मैंने देखा कि, उस विधवा का सिर सहसा उसके घुटनों पर गिर गया; और धीरे धीरे, उसके पास के ब्राह्मण और वृद्ध स्त्रियों का समूह बाहर चले गये। मेरी इस धमकी का अच्छा प्रभाव हुआ। मैं वहां से चला आया। कुछ देर बाद मैंने सुना कि उसने सती होने की इच्छा छोड़ दी और उसके पति का मृतक शरीर अकेला ही अग्निसात् कर दिया गया"।

"मैंने पाँच चार बार स्त्रियों को जीता जलते देखा है। अहः, क्याही भयङ्कर काण्ड है! मुझे यद्यपि बहुत बार यह अमानुषिक कृत्य देखने का मौक़ा मिला है; तथापि मैं उसे अधिक नहीं देख सका। उसका स्मरण होते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं"।

"एक बार मैं अहमदाबाद से आगरे को आ रहा था। राह में, मैं, एक दिन, एक पेड़ के नीचे जब दो पहर को ठहरा था; मैंने सुना कि पासही एक स्त्री सती होने को थी। मैं उसे देखने गया। मैंने देखा कि एक सूखे तालाब में एक गढ़ा खोदा गया है

उसमें लकड़ियां भरी हैं; उनपर एक मृतक शरीर रक्खा है; उसके पास एक स्त्री बैठी है; चार पाँच ब्राह्मण उसमें चारों ओर से आग लगा रहे हैं; पाँच प्रौढ़ा स्त्रियां अच्छे वस्त्र पहने, एक दूसरे को हाथ से पकड़े हुए गाती और नाचती हुई, चिता का प्रदक्षिणा कर रही हैं; और अनेक स्त्री पुरुष तमाशा देख रहे हैं। चिता पर ख़ूब घी और तेल डाला गया था। मेरे पहुंचने पर थोड़ी देर में वह चिता जली और उससे लपटें निकलने लगीं। उस स्त्री के वस्त्रों में आग लग गई; परन्तु मैंने उसके चेहरे पर भय अथवा दुःख के कोई चिन्ह न देखे। मैंने समझा काम हो चुका। परन्तु यह मेरी भूल थी। मेरे आश्चर्य्य की सीमा न रही, जब मैंने देखा, कि उन पाँच स्त्रियों में से भी एक के वस्त्र में आग लगी और वह सिर के बल चिता पर गिर गई। दूसरी ने भी ऐसा ही किया। तब तक शेष तीन, पूर्ववत्, गाती, नाचती और चिता की प्रदक्षिणा करती रहीं। यथा-समय, बारी बारी से, वे भी आग में कूदीं और थोड़ी ही देर में ६ जीवित स्त्रियां और एक मृत पुरुष जल कर राख हो गये! मैंने पीछे से सुना कि वे पाँचों स्त्रियां दासी थीं। पति के जीने की जब आशा न रही तब पत्नी ने उसके साथ सती होने का निश्चय किया। इस निश्चय को सुनकर उन दासियों ने भी प्रेमातिरेक के कारण, अपनी स्वामिनी के साथही जल जाने का प्रण किया"!

"एक और अद्भुत घटना सुनिये। एक युवती स्त्री एक युवा मुसल्मान से अनुचित प्रेम रखती थी। यह मुसलमान दरज़ी का काम करता था और तंबूरा भी अच्छा बजाता था। इस स्त्री ने अपने प्रेम-पात्र की सलाह से अपने पति को विष दे दिया। देकर वह उसके पास तुरन्त पहुँची और उससे कहा कि अब भग चलने में विलम्ब न करना चाहिए। क्योंकि विलम्ब करने से, लोक-लज्जा के भय से, मुझे सती हो जाना पड़ेगा। यह बात उसके प्रेमी ने न मानी; उसने अपना वादा पूरा न किया। इसपर उस स्त्री ने ज़रा भी क्रोध अथवा भय न प्रकट किया। वह तत्काल अपने घर लौट आई। अपने पति के मरने का समाचार उसने अपने सम्बन्धियों को दिया, और उसके साथ सती हो जाना भी निश्चय किया। इस पिछली बात को सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए। सब प्रबन्ध कर दिया गया। चिता तैयार हुई; उसपर उसके मृतक पति का शरीर रक्खा गया। एक ओर उसमें आग भी लगा दी गई। इतना हो चुकने पर वह स्त्री चिता की प्रदक्षिणा करने लगी और अपने निकट सम्बन्धियों से मिलने भेटने लगी। इस समय वह दरज़ी भी तंबूरा लिए हुए वहां उपस्थित था। वह स्त्री उसके भी पास पहुँची और उससे अन्तिम भेंट करने के बहाने उससे लिपट गई। लिपट कर, बल-पूर्वक, वह उसे चिता तक खींच लाई और उसको लेकर जलती हुई चिता में गिर गई"!

"मैंने एक बार, लाहौर में, एक बहुतही रूपवती और कम उमर की विधवा को जलाया जाते देखा है। उसकी उमर १२ वर्ष से अधिक न होगी। वह बिचारी जब उस भयङ्कर चिता के पास पहुँची तब जीती होकर भी मुर्दा के समान हो गई। उसकी विकलता का वर्णन नहीं हो सकता। वह थर थर काँपती थी और बड़े ही करूण-स्वर से रोती थी। एक बुढ़िया उसे अपने हाथों से थाँभे थी और चार ब्राह्मण उसकी मदद कर रहे थे। इस प्रकार उन पाँचों ने उसे ज़बरदस्ती चिता पर लेजा कर बिठाया। वहां उन्होंने उसके हाथ और पैर दृढ़ता से बाँध दिये कि कहीं वह भग न जाय। इस, प्रकार, इस निःसहाय और विवश स्थिति में, वह जीती जला दी गई"!

"परन्तु कोई कोई स्त्री बड़ी ही दृढ़ होती हैं। वे जलने से ज़रा भी नहीं डरतीं। जब मैं सूरत से फ़ारस को जा रहा था तब मैंने एक ऐसी ही विधवा को सती होते देखा। मेरे साथ, उस समय, कई अँगरेज़ और डच थे। हमने देखा कि वह स्त्री बड़े धैर्य्य और बड़ी वीरता से उस अमानवी लीला के लिए प्रस्तुत थी। उसकी उमर कोई ३५ वर्ष की होगी। भय उसको छू तक नहीं गया था; वह

बिलकुल निडरसी बात चीत करती थी। हमलोगों की ओर वह बड़ी बेपरवाही से देख रही थी। घबड़ाहट का उसके मुख पर नाम तक न था। वह अपनी चिता की लकड़ियों को ऐसे सुधार रही थी जैसे कोई फूलों से सेज सुधारता हो। वह आनन्दपूर्वक चिता पर बैठी; अपने पति का सिर उसने बड़े प्रेम से अपने गोद में लिया; और अपने हाथ ही से एक जलती हुई मशाल उसने चिता में लगा दी! इस घटना को देख कर मेरी जो दशा हुई उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। वह अब तक मेरी आँखों के सामने है"।

"परन्तु ऐसी अनेक घटनायें मैंने देखी हैं जिनमें स्त्रियां ज़बरदस्ती जला दी गई हैं। चिता को देख कर ही कितनी अबलायें काँपने लगती हैं; परन्तु निष्ठुर और निर्दयी तमाशबीन उनको जलने के लिए उत्तेजित करते रहते हैं; यहां तक कि वे उनको बलपूर्वक आग में झोंक देते हैं। मैंने एक बार आँखों से देखा कि एक स्त्री जलती हुई चिता से पीछे हट आई। परन्तु वह, अपनी इच्छा के विरुद्ध, चिता पर ढकेल दी गई। एक और ऐसी ही अभागिनी, चिता पर आग को अपनी ओर बढ़ती देख, भगने लगी। परन्तु उसके आस पास जो हत्यारे इकट्ठे थे उन्होंने बांसों से उसकी ख़बर ली! और वह वहां से हिलने न पाई"।

"कभी कभी स्त्रियां, सती होने के डर से, पति की मृत्यु होने पर भग जाती हैं। कभी कभी वे अन्य जातिवालों के द्वारा छीन तक ली जाती हैं। समुद्र के किनारे जहां पोर्चुगीज़ों का विशेष प्रभुत्व है, वहां ये लोग सती होने के लिए प्रस्तुत स्त्रियों को, बहुधा बचा लेते हैं"।

१६९० ईसवी में कलकत्ते के फोर्टविलियम में चैनक नामक एक अँगरेज़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एजण्ट था। एक बार वह एक स्त्री को सती होते देखने गया। उसके साथ बहुत से सिपाही भी थे। वहां उस स्त्री के रूप पर वह मोहित हो गया और बल-पूर्वक उसे उसने छीन लिया। छीनकर उसे उसने अपने यहां रक्खा। उससे सन्तति भी हुई। बहुत दिनों तक वे दोनों प्रेम-पूर्वक रहे। उसके मरने पर चैनक साहब ने उसकी बहुत अच्छी समाधि बनाई। यह घटना टालबाय ह्वीलर साहब ने अपनी एक पुस्तक में लिखी है।

जल-वर्षक वृक्ष।

जिस विश्वकर्मा ने सूर्य से ज्वलन्त और चन्द्र से शीतल ज्योतिःपुञ्ज को; तथा दिन से कार्यकर और रात से सुखकर समय को, एवं समुद्र और स्थल की रचना की है, उसने, अपने जल और थल रूपी पशुशाला के पलुए जीवधारियों के लिए ऐसी ऐसी आवश्यक चीजें भी बना दी हैं कि जिनको देख उन जीवधारियों के शिरोमणि मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती। जहां पानी का नाम नहीं वहां उसने तरबूज़ सा फल और जानवरों के गले में पानी का थैली बनाई; जहां गर्मी है वहां बाल-रहित और जहां शीत है वहां विशाल-बाल-वाले पशु बनाये; जहां दिन होता ही नहीं, वहां स्वयं प्रकाश इत्यादि की उत्पत्ति की! उस दयालु कारीगर की कौन कौन सी बात गिनाई जाय। उन्होंमें से हम आज एक का हाल सुनाना चाहते हैं, जिसे लोग कम जानते होंगे।

प्राचीन काल में एटलांटिक समुद्र के फेरो टापू में न पानी ही बरसता था और न किसी प्रकार का जलाशय–नदी, नाला, चश्मा, प्रपात आदि ही था; और न वहां के रहनेवाले कुआ या तालाब खोद कर जल निकालना जानते थे। आप समझ सकते हैं कि ऐसी दशा में जल, जो जीवन कहलाता है, उसके बिना जीवधारियों का जीता रहना नितान्त असम्भव होता। पर, नहीं, उस खेलवाड़ी को तो विश्व की फुलवाड़ी के उस भाग पर भी जानवर पालना था। वहां एक जाति के पेड़ थे जो जलवर्षक वृक्ष कहे जाते थे। इन्हींसे प्रचुर जल मिलता था और टापू के निवासियों का सारा काम

इन्हीं से चलता था। यात्रियों ने इनका दर्शन किया और वृत्तान्त भी अक्षरबद्ध कर दिया। अंग्रेज़ यात्री मिस्टर लूईस जैकसन ने इस अद्भुत वृक्ष के विषय में यों लिखा है—

"यह वृक्ष ओक (oak), सिंदूर, बलूत के समान मोटा, ४०-४८ फुट ऊंचा और डालियोंवाला होता है। लारेल ट्री (Laurel-tree) के समान इसकी पत्तियां होती हैं। ऊपरीतल श्याम और भीतरी श्वेत। न तो इसमें फूल लगते हैं; न फल। दिन को पत्तियां सूरज की कड़ी किरनों से झुलस जाती हैं; पर, रात को उनसे पानी की बूंदें टपकने लगती हैं। हर रात को बादल की टोपी उसके सिर पर देखकर अचरज होता है। और यह अचरज और भी बढ़ जाता है, जब देखते हैं, कि पानी जो जड़ के पास इकट्ठा होकर बहने लगता है, उस बादल से नहीं आता, वरन् पेड़ से पसीजता अर्थात् पसीने सा छूटता है। बहुत जाँच के अनन्तर यह निश्चय किया गया है कि प्रति पेड़ से एक रात में कम से कम २० हज़ार टन पानी निकलता है!!!"

ये वृक्ष टापू भर छिटके थे। इनसे निकला हुआ जल टापू के नर नारी और पशुओं की, १५० मील के घेरे में रहनेवालों की, आवश्यकता को दूर करता था। जैकसन साहब इस भांति इसके वर्णन को समाप्ति करते हैं—"यदि मैं अपनी आँखों इस पेड़ को न देखे होता तो इसके अस्तित्व पर प्रतीति न लाता"।

सन् १८७७ के ८वें सेप्टेम्बर का "इंगलिशमैन" समाचार पत्र लिखता है, कि इस देश में सूखा बहुत पड़ने लगा है; हमारे सरकारी बागीचों के सुपरिंटेण्डेण्ट लोगों को उस पेड़ की ओर ध्यान देना चाहिए जिसका आविष्कार, पेरू देश के मोयोबाम्बा (Moyobamba) नगर के जङ्गलों में हुआ है। अमेरिकावाले इसे "तामिया-कास्पी" अर्थात् जलवर्षकवृक्ष कहते हैं। सुनते हैं, यह अद्भुत वृक्ष वायुमण्डल की नमी को खींच लेता है और अपनी डालियों तथा पत्तों से उसे बरसाता है। यहां तक कि कभी कभी पृथ्वी को पानी से सराबोर कर डालता है। गर्मी में जब नदियां घट जाती हैं और जल दुर्लभ हो जाता है, उस समय, उसकी यह शक्ति बहुत बढ़ जाती है। एक महाशय ने परीक्षा करके पेरूसरकार से निवेदन किया है कि, कृषि के लाभ के लिए, देश के सूखे भागों में इसके लगाने का प्रयत्न किया जाय।

काशीप्रसाद।

आफ़रीका के खर्वाकार जङ्गली मनुष्य।

आफरीका आश्चर्यों का घर है। वहां की सभी बातें अजीब हैं। वहां के मनुष्य, वहां के पशु पक्षी, वहां के अगम्य जङ्गल, और वहां के हज़ारों कोस-व्यापी मरुस्थल अचरज से भरे हुए हैं। १८८८ ईसवी में स्टैनली साहब ने इस



आश्चर्य्यमयी भयावनी भूमि में, ईजिप्ट से लेकर विक्टोरिया न्यान्ज़ा झील तक, बहुत लम्बा सफ़र किया। अपनी इस कौतुकपूर्ण यात्रा का वर्णन उन्होंने एक पुस्तक में लिखा है। इस पुस्तक में आफ़रीका के खर्वाकार जङ्गली लोगों का भी वृत्तान्त

है। ये असभ्य जङ्गली बहुत छोटे होते हैं। परन्तु ठिंगने होकर भी वे बड़े चालाक और बड़े शिकारी होते हैं।

१८८८ ईसवी के मार्च महीने में, जिस समय स्टैनली साहब इपोटो नामक जगह से कुछ दूरी पर खेमे डाले हुए थे, उनके पास एक खर्वाकार स्त्री लाई गई। जहां पर खेमे थे उससे १४ मील पर इन जङ्गली लोगों के रहने की जगह थी। ये लोग बड़े ज़बरदस्त चोर होते हैं। स्टैनली साहब के खेमे तक ये धावा मारते थे और खाने पीने की चीज़ें चुरा ले जाते थे। यह स्त्री इन्देकरू नामक नगर के खर्वाकार राजा की रानी थी। इन रानी साहबा का चित्र पृ० ६७ में देख लीजिए।

यह प्रायः नग्न थी। इसके गले में पालिश किये हुए लोहे की पतली पतली हंसुलियां थीं जिनके किनारे, दोनों छोरों पर, घड़ी की कमानी के समान, घेरदार थे। उसके कानों से लोहे की तीन तीन मोटी मोटी बालियां लटकती थीं। बाज़ूबन्द भी उसने लोहे ही के पहन रक्खे थे। उसका रंग भूरा था; मुँह फैला हुआ गोल था; आँखें बड़ी बड़ी थीं; होंठ छोटे परन्तु भरे हुए थे। कमर में वह छाल का एक छोटा सा कपड़ा लपेटे हुए थी। यद्यपि वह प्रायः नग्न थी, तथापि उसके चेहरे से शालीनता झलकती थी। वह सब प्रकार शान्त थी। उँचाई में वह ४ फुट ४ इञ्च थी। उमर उसकी कोई १९ वर्ष की होगी। उसे देखकर चित्त बहुत प्रसन्न होता था।

इस प्रकार की एक स्त्री स्टैनली साहब के साथी सर्जन पार्क के साथ बहुत दिन तक थी। वह उनका बोझा उठाती थी; जहां पड़ाव पड़ता था वहां लकड़ियां इकट्ठा करती थी; छोलदारी के दरवाज़े बैठी हुई रखवाली करती थी; चाह बनाना सीख गई थी, और रोज़ बना कर सर्जन पार्क को पिलाती भी थी। वह उनके अत्यन्त वशीभूत थी; जी जान से उनकी सेवा करती थी; और अनजान आदमी को कभी उनके असबाब के पास नहीं फटकने देती थी।

अक्टोबर १८८८ में स्टैनली साहब बोडो नामक किले को जा रहे थे। २८ अक्टोबर को वे अवाटिको स्थान में पहुँचे। वहां पर एक स्त्री पुरुष का जोड़ा उनके आदमी पकड़ लाये। ये दोनों खर्वाकार जङ्गली थे। इनमें से धनुर्वाण और भालाधारी पुरुष का चित्र नीचे देखिए।



इस वामनरूप जङ्गली के विषय में जो कुछ स्टैनली साहब ने लिखा है उसका आशय उन्हीं के मुँह से सुनिए—

"इसकी लम्बाई केवल ४ फुट थी; सिर २०३⁄४ इञ्च था; छाती २५३⁄४ इञ्च थी; टांगें २२ इञ्च थीं; भुजा १९३⁄४ इञ्च थे। यह पूरा जवान था। उमर इसकी कोई २१ वर्ष होगी। इसका रङ्ग तांबे का सा था। इसके सिर पर एक अजीब क़िसम की टोपी थी; उसपर तोते के परों का एक गुच्छा था। यह टोपी इसे या तो किसी ने तोहफे के तौर पर दी होगी, या इसे इसने कहीं से चुरा लिया होगा। छाल के कपड़े के एक लम्बे टुकड़े की इसने लँगोटी पहन रक्खी थी। उसके सिवा और यह बिल्कुल दिगम्बर था। इसके एक हाथ में धनुर्वाण था, और दूसरे में भाला। इसके हाथ बहुत नाज़ुक जान

पड़ते थे। मालूम होता था कि केले छीलने का काम इससे लिया जाता था"।

"इस वामन को देखकर मेरे मन में जो जो भावनायें हुईं उनका अनुमान कोई नहीं कर सकता। यह बावन अंगुल का शरीर प्राचीन से प्राचीन मनुष्यों के वंश से उत्पन्न हुआ है। हज़ारों वर्ष पहले इसके पूर्वज जिस दशा और जिस भेष में थे उसी दशा और उसी भेष में यह भी है। इसको देखा, मानो कई हज़ार वर्ष पहले हुए मनुष्यों को देख लिया। जब से इनके वंश की उत्पत्ति हुई तब से ये बराबर इस जङ्गली आफ़रीका में सुख से निवास कर रहे हैं। ईजिप्ट, आसोरिया, बाबुल, फ़ारस, ग्रीस और रोम का उत्कर्ष भी हुआ, और पतन भी हुआ। उनकी पुरानी सम्पत्ति, उनकी पुरानी प्रभुता, और उनके पुराने तर्ज़ के मनुष्य एक भी नहीं; परन्तु ये खर्वाकार जङ्गली पूर्ववत् बने हुए हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं हुआ। नाइजर नदी के किनारे से, धीरे धीरे, ये अब मध्य आफ़रीका के इन अगम्य जङ्गलों में आगये हैं, और इधर उधर पत्तों के झोपड़े बनाकर पूर्ववत् शिकार करते फिरते हैं। इनके सजातीय केपकालोनी में बुशम्यन कहलाते हैं; लुलुंगू की तराई में बटवा कहलाते हैं; मोनबुट्टू में अक्का कहलाते हैं; और शहरू के आस पास बमबुट्टो कहलाते हैं"।

"सूदान और ज़ैंज़ीबार के रहनेवाले जो मेरे साथ थे, उनके पास खड़े हुए इस छोटे से मनुष्य के बच्चे के मन में अनेक प्रकार के विचार आते रहे होंगे। उसके चेहरे को देखने ही से जान पड़ता था कि वह बड़े सोच विचार में था। भीमाकार मनुष्यों को अपने चारों ओर देखकर, अपनी भावी दशा का विचार करके, और प्राण बचने की आशा से उत्कण्ठित होकर इसकी अजब हालत हो रही थी। अपने दूने ऊंचे और मोटे मनुष्यों को देखकर वह कहता होगा कि ये कहां से आये! क्या ये स्वर्ग से आगये; अथवा पाताल से? ये मुझे क्या करेंगे? क्या मुझे मार डालेंगे? कैसे? भूनकर, जैसे हम लोग शिकार भूनते हैं? अथवा किसी बड़े बरतन में डालकर ये मुझे उबालेंगे?"

"इस प्रकार के विचार जब इस मनुष्य के मन में आ रहे थे, तब मैंने इसको अपने पास बिठलाया; इसकी पीठ ठोकी; इसके बदन पर हाथ फेरा। इस तरह इसे कुछ कुछ निर्भय करके मैंने इसे केले खाने को दिये। केलों को उसने बड़ी प्रसन्नता से लिया। उन्हें लेकर वह मुसकुराया। मानों उसने इस तरह अपनी कृतज्ञता प्रकट की। यह बौना बड़ा चालाक था। इससे हमलोगों ने संज्ञा से बात चीत की। हमने पूछा यहां से गांव कितनी दूर है; किस तरफ़ है; वहां खाने को कुछ मिलैगा या नहीं; रास्ता कैसा है; चोरों का डर तो नहीं। इन प्रश्नों का उत्तर उसने संज्ञाओं ही से दिया। परन्तु ऐसी योग्यता से दिया, कि उनके समझने में ज़रा भी कठिनाई नहीं पड़ी"।

"गेयू और इटूरी नदियों के बीच में ये छोटे आकार के जङ्गली अधिकता से रहते हैं। ये बड़े ही प्रवीण शिकारी होते हैं। जिस जङ्गल में ये रहते हैं, उसे थोड़े ही दिनों में ये पशु-पक्षी-हीन कर देते हैं। अतएव शीघ्र ही इन्हें एक जगह छोड़ कर दूसरी को, और दूसरी छोड़ कर तीसरी को, जाना पड़ता है। इनके भाले बड़ेही भयङ्कर होते हैं। उनमें जो लोहे का फल लगा रहता है वह बहुत लम्बा और तेज़ होता है। इनका मुख्य शस्त्र धनुर्बाण है। इनके बाणों की नोकें सैकड़ों तरह की होती हैं। कुछ का चित्र नीचे देखिए—



"इन बाणों से ये लोग हाथी तक को मार डालते हैं और सैकड़ों मत हाथीदाँत इकट्ठा करके, केले, तम्बाकू, आलू, भाले और बाणों के बदले, दे डालते हैं। ये अपने बाणों की नोकों में एक बड़ा ही भीषण विष लगाते हैं। इनके बाण की नोक का रुधिर में स्पर्श हो जाने पर कोई जीव जीता नहीं रह सकता। बाण लगते ही आदमी बेहोश हो जाता है; कलेजा धड़कने लगता है; पसीने की धारा छूटती है। यह होते ही होते शीघ्रही प्राण-वायु निकल जाता है। एक मनुष्य की भुजा में केवल आलपीन की नोक के बराबर छेद हो गया था। इतने ही से वह एक क्षण भर में मर गया। एक मनुष्य की मृत्यु सवा घण्टे में हो गई। एक स्त्री को लोग उठाकर जब तक सौ क़दम दूर ले जायं तब तक वह निर्जीव हो गई। एक मनुष्य तीन घण्टे में और एक सौ घण्टे में मरा। विष जितनाही ताज़ा होता है उतनाही शीघ्र मृत्यु होती है। ऐसे ज्वलन्त कालकूट विष से यदि शेर, हाथी और गैंड़े मर कर भूमि पर लोट जावें तो क्या आश्चर्य्य है। ईश्वर ने इन अशक्त और खर्वाकार जङ्गली मनुष्यों को ऐसे विकराल बाणों के चलाने का ज्ञान देकर उनकी अशक्तता और खर्वाकृति की न्यूनता को अपेक्षा से अधिक पूरा कर दिया है"।

मनोरञ्जक श्लोक।

सच्छिद्र निकटे वासः कर्तव्यो न कदाचन।
घटी पिबति पानीयं झल्लरी तेन ताड्यते ॥ १ ॥

सच्छिद्र (सदोष) के पास कभी न रहना चाहिए। देखिए, पानी पीती है छेददार घड़ीरूपी कटोरी; और मार पड़ती है पास रहनेवाले घड़ियाल के ऊपर!

❋

लज्जा कीर्तिर्जनकतनया शैवकोदण्डभंगे
तिस्रः कन्या निरुपमतया भेजिरे रामचन्द्रम्।
अन्त्याः पाणिग्रहणसमये ज्यायसी जातकोपा
भूपालैःसह खलु गतवती, मध्यमाऽधोदिगन्तान् ॥

जब रामचन्द्र ने शङ्कर का धनुष तोड़ा तब उनके निरुपम पराक्रम पर मोहित होकर (१) लज्जा (२) कीर्ति और (३) जानकी—ये तीनों बहनें उनके पास उपस्थित हुई। परन्तु रामचन्द्र ने सबसे छोटी, अर्थात् जानकी ही, का स्वीकार किया। इससे, बड़ी बहन, लज्जा को, क्रोध आया और वह स्वयम्वर में आये हुए राजाओं के साथ चली गई। मँझली से भी छोटी का यह सौभाग्य न देखा गया; वह भी, नीचे, दूर तक, जहां उसे आश्रय मिला, चली गई।

❋

व्यालाश्रितापि विफलापि सकण्टकापि
वक्रापि पङ्किलभवापि दुरासदापि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तो-
रेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥३॥

तुझ पर सर्पों का वास भी है; तुझ में फल भी नहीं होते; तू कण्टकों से आच्छादित भी है; तू वक्र भी है; उत्पत्ति भी तेरी कीचड़ से है—तथापि, हे केतकी, अपनी अनुपम सुगन्ध से तू सब की प्यारी हो रही है। सच है; यदि एक भी अलौकिक गुण हुआ तो उससे सारे दोष ढक जाते है।

❋

अधः पश्यसि किं वृद्ध तव किं पतितं भुवि।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्य-मौक्तिकम् ॥

बाबा, तुम नीचे की ओर झुके क्या देख रहे हो; क्या ज़मीन पर तुम्हारा कुछ गिर पड़ा है? अरे मूर्ख, क्या तू नहीं जानता कि मेरा तारुण्यरूपी मोती खो गया है? (उसे ही मैं ढूंढ रहा हूं)

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री।



श्रीयुत बाल गङ्गाधर तिलक, बी॰ ए॰, एल॰ एल॰ बी॰।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५] मार्च १९०४ [संख्या ३

विविध विषय।

गत वर्ष सरस्वती की किसी संख्या में यह लिखा गया था कि युक्त प्रान्त की गवर्नमेण्ट वैज्ञानिक रीडर्स लिखा रही है। म्योर सेंट्रल कालेज के अध्यापक हिल साहब श्रौर इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज के अध्यापक के साहब ने इन रीडरों को लिखा। इन पर विचार हुआ। विचार का फल २३ जनवरी के गवर्नमेण्ट गज़ट में प्रकाशित भी हो गया। देशी भाषा में पढ़ाये जाने के लिए ये किताबें अंगरेज़ी में लिखकर परीक्षार्थ भेजी गई थीं। पसन्द आने पर इनका तरजमा देशी भाषा में होता। परन्तु पुस्तकें कमिटी को पसन्द नहीं आईं; बहुत क्लिष्ट समझी गईं। तिस पर भी बनानेवालों के परिश्रम, श्रौर बनवाने, छपाने श्रौर प्रकाशित करनेवालों के ख़र्च का ख़याल करके दयामयी गवर्नमेण्ट ने दोनों प्रकार की वैज्ञानिक रीडरों को हज़ार हज़ार रुपया इनाम देकर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। लाट साहब ने इन रीडरों के बनाने वालों की तारीफ़ भी ख़ूब की। उदारचरितों के लिए यह सर्वथा स्वाभाविक है। अब गवर्नमेण्ट का मत बदला है। अब वह बिलकुल विज्ञानही नहीं पढ़ाना चाहती; विज्ञान श्रौर साहित्य की वह खिचड़ी माँगती है। अब वह ऐसी रीडरें चाहती है—

(१) लोअर प्राइमरी क्लासों के लिए एक ऐसी रीडर जिसमें विज्ञान की भी बातें हों श्रौर नीतिमूलक कहानियां इत्यादि भी हों।

(२) अपर प्राइमरी क्लासों के लिए दो रीडर्स— एक में क़िस्से कहानियां श्रौर कविता हो। दूसरी में केवल विज्ञान।

(३) सेकण्डरी, अर्थात् मिडिल क्लासों के लिए, एक विज्ञान से भरी हुई रीडर, दूसरी साधारण रीडर। दूसरी के लिए नई रीडर अपेक्षित नहीं; जो आज कल है, छोटी कर

देने पर उसीसे काम निकल जायगा। अब गवर्नमेण्ट को चार किताबें दरकार हैं—

(क) लोअर प्राइमरी क्लासों के लिए ज्ञान और कहानियों की एक रीडर।

(ग) अपर प्राइमरी और सेकण्डरी क्लासों के लिए कविता और कहानियों की एक रीडर।

(घ) अपर प्राइमरी और सेकण्डरी क्लासों के लिए ज्ञानगर्भित दो रीडर्स।

इनके लिखनेवालों को गवर्नमेण्ट ने पाँच पाँच सौ रुपये इनाम देने की घोषणा दी है। तीन तरह की रीडर्स में, हर तरह की रीडर के लिए, पाँच पाँच सौ के तीन इनाम होंगे। अर्थात् प्रत्येक प्रकार की रीडरों में से तीन अच्छी रीडर्स लिखने वालों को यह पारितोषिक मिलैगा। उन तीन में से जो सर्वोत्तम समझी जायगी वही जारी होगी। भाषा इन सबकी, कविता की भी, रोज़मर्रः के बोल चाल की हो; जिसमें वही किताबें नागरी और फ़ारसी अक्षरों में छाप दी जायँ; जुदा जुदा किताबें पढ़ाने की ज़रूरत न पड़ै। अतएव इनकी भाषा न संस्कृत ही की ओर झुकी हो, न फ़ारसी ही की ओर। बीचो बीच की हो, जिसे हिन्दू और मुसल्मान दोनों समझ सकें। देखैं ऐसी मुख़न्नस भाषा लिखने में किसे नामवरी हासिल होती है।

एक बात लिखना हम भूल गये। वह यह कि नागरी और फ़ारसी अक्षरों में (क) और (ग) रीडर्स की छपी हुई कापियों के साथ अंगरेज़ी अनुवाद भी भेजना पड़ैगा। यह अनुवाद या तो छपा हो या टाइप में लिखा हो जिसमें पढ़नेवालों को ज़रा भी तकलीफ़ न उठानी पड़ै। ऐसा न होने से काम भी न चलता। कारण यह है, कि जो लोग इन रीडर्स के भाग्य की परीक्षा करेंगे वे, शायद, देशी भाषा में बिलकुल ही कोरे होंगे। संभव है परीक्षकों में हमारे प्रभु साहब लोग ही अधिक रहें। इसलिए उनकी सुविधा के लिए यह बात बहुत ही आवश्यक है। (ग) रीडर्स के लिए अनुवाद न भेजना पड़ैगा, क्योंकि उनको अँगरेज़ी ही में लिखने का हुक्म है। अँगरेज़ ही अच्छी अँगरेज़ी लिखेंगे भी। पसन्द आजाने पर उनकी "भाषा" बनैगी।

* * *

जनवरी १९०४ से सत्यवादी नामक एक नया समाचार-पत्र हरिद्वार से निकलने लगा है। यह साप्ताहिक है। मूल्य इसका २॥) है। "पञ्जाब प्रान्त के निमित्त एक निष्पक्ष राजनैतिक पत्र की परमावश्यकता, तथा युक्त प्रान्त के पश्चिम भाग में एक सर्वाङ्ग सम्पन्न पत्र के अभाव" को दूर करने के लिए यह पत्र निकाला गया है। पत्र होनहार जान पड़ता है। लेख भी इसमें अच्छे निकलते हैं। इसमें जो चुटकुले रहते हैं उनमें से कोई कोई बड़े मज़े के होते हैं। वेदान्त पर भी इसमें लेख रहते हैं। यह विषय क्लिष्ट है इसलिए हमारी समझ में अभी इस पर लिखना युक्तिसंगत नहीं। ऐसे लेख बिरलों ही की समझ में आते हैं। इसके सम्पादक संस्कृतज्ञ हैं। यह और भी अच्छी बात है। ईश्वर करै यह दीर्घायु हो।

कोरिया और कोरिया-नरेश।

कोरिया एक प्रायद्वीप है। वह जापान के बहुत निकट है। कोरिया और जापान के बीच समुद्र का एक बहुतही पतला भाग है, उसे कोरिया का मुहाना कहते हैं। जैसे फ्रांस और इंगलैण्ड के बीच "इंगलिश चैनल" है; कोरिया और जापान के बीच वैसे ही यह मुहाना। इसी सन्निकटता के कारण कोरिया में रूस का सञ्चार जापान की आँखों का काँटा होरहा है; वह उसे बहुत खटकता है। रूस का माहात्म्य यदि कोरिया में बढ़ा तो जापान की शक्ति कुछ अवश्य ही क्षीण हो जावैगी। दोनों में छेड़ छाड़ बढ़ैगी; अतएव जापान की हानि सर्वथा सम्भव है। फिर, एक ऐसी प्रबल शक्ति का पास आजाना जिसको

राज्य-बुभुक्षा कभी शान्त नहीं होती, कदापि मङ्गल-जनक नहीं हो सकता। कोरिया का दक्षिणी भाग जापान के निकट है और उत्तरी मञ्चूरिया से मिली हुआ है। मञ्चूरिया चीन का एक सूबा है; परन्तु उसे रूस ने दबा लिया है। अनेक आशा और आश्वासन देकर भी और सन्धिपत्रों पर छोड़ने की शपथ खाकर भी रूस उसे ग्रासही किये हुए है। मञ्चूरिया की सीमा कोरिया की सीमा से मिली होने के कारण, रूस भी कोरिया के बहुत निकट है। मञ्चूरिया का रूस के आधीन रहना जपान के लिए किसी प्रकार मङ्गल जनक नहीं। परस्पर के इसी नैकट्य ने, और, परस्पर की इसी प्रभुत्ववृद्धि की कामना ने, रूस और जापान को उत्तेजित कर दिया है। युद्ध की मेघमाला पूर्वी आकाश में, पीत और प्रशान्त सागर के ऊपर, बड़ाही विकराल रूप धारण करके उमड़ आई है। इस लेख के प्रकाशित होने के पहले ही, रक्तपात रूपी प्रचण्ड धारासार के साथ उसकी भीम गर्जना शायद सुनाई पड़ने लगै।

कोरिया एक बहुत छोटा प्रायद्वीप है। उसका क्षेत्रफल कोई ८०,००० वर्ग मील है। वह पहाड़ी देश है। उसमें कितनेही छोटे बड़े पहाड़ हैं; नदियां भी बहुतसी हैं। वहां की पृथ्वी के गर्भ में अनन्त सोना, चांदी, तांबा, लोहा और कोयला भरा पड़ा है। एक बंगाली यांञ्जिनियर वहां गये थे। उन्होंने अमेरिका में जाकर एक व्याख्यान दिया है। उसमें आपने कहा है कि इस भूमण्डल में और कोई देश ऐसा नहीं जहां खनिज द्रव्यों का इतना आधिक्य हो। इसी सम्पत्ति को लूटने की गुप्त इच्छा से रूस और जापान दोनों के मुँह से लार टपक रही है; दोनों लालायित हो रहे हैं।

कोरिया में सब ८ सूबे हैं। उसकी राजधानी सियूल नामक नगर है। च्यमलफू बन्दर से सियूल तक रेल जाती है। च्यमलफू से सियूल कुल २४ मील है। यह रेल जापानियों के प्रबन्ध से बनी है; वहीं उसके कर्ता धर्ता हैं। कोरिया में कोरिया ही की भाषा बोली जाती है; परन्तु उसपर वहां वालों की प्रीति कम है। पढ़े लिखे आदमी बहुधा चीनी भाषा बोलते हैं। राजकार्य्य भी उसी भाषा में होता है। अच्छे अच्छे ग्रन्थ भी उसी भाषा में बनते हैं। राज्य-प्रणाली सब चीन से नक़ल की गई है। चीन की तरह कोरिया में भी "मन्दारिन" हैं; परीक्षायें भी वैसीही होती हैं; और कोई भी कोरियावासी उनमें शामिल हो सकता है। पास हो जाने पर, और बातों का कुछ भी ख़याल न करके, उम्मेदवार को, उसकी योग्यता के अनुसार जगह मिलती है। कोरियावाले पहले बौद्ध थे; अब भी कहीं कहीं इस मत का वहां प्रचार है; परन्तु चीन के "कनफ्यूशश" नामक धर्म्म की वहां विशेष प्रबलता है। कोरियानरेश इसी धर्म्म के अनुयायी हैं। कोरिया में स्त्रियों का बहुत कम आदर होता है; परन्तु स्वतन्त्रता उनको ख़ूब है। बड़े बड़े घर की स्त्रियों को छोड़ कर और कहीं वे परदे में नहीं रक्खी जातीं।

पुराने ज़माने में जापान ने कोरिया को कई बार हराया है। १७९० ईसवी तक कोरियानरेश जापान की रक्षा में समझे जाते रहे हैं। परन्तु उसके बाद कोरिया ने चीन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। कोरिया को यद्यपि सब तरह की स्वतन्त्रता थी; परन्तु चीनराज को उसे अपना राजेश्वर समझना पड़ता था; और वार्षिक कर भी देना पड़ता था। १८७५ ईसवी में जापान ने दबाव डालकर कोरिया के साथ एक सन्धि की; उसके अनुसार जापान को कई अधिकार मिले। उसका वहां प्रवेश हो गया; और धीरे धीरे महत्व बढ़ा। जापान का एक अधिकारी, "रेसिडण्ट" की तरह, वहां रहने लगा। जापान के जहाज़ कोरिया के बन्दरों में आने जाने लगे; जापानी-व्यापारी भी वहां अधिकता से व्यापार करने लगे।

कोरियावाले अपने नरेश को देवता समझते हैं; देवता ही के सदृश वे उसको पूज्य मानते हैं। परन्तु राजा का वह नाम, जो उसे चीन के

राजराजेश्वर से, सिंहासन पर बैठने के वक्त मिलता है, मुँह से निकालना पाप है। राजा के शरीर को लोहे के शस्त्र से स्पर्श करना सबसे भारी अपराध है; उसका प्रतिशोध केवल प्राणदण्ड है। लोहे का स्पर्श होना बहुतही बुरा समझा जाता है। १८०० ईसवी में टेंग-सांग-ताप-वेंग नाम का राजा एक फोड़े से पीड़ित होकर मर गया; परन्तु उसको चीरने के लिए लोहे के शस्त्र का स्पर्श स्वीकार नहीं किया। सियूल में घुड़सवार को यदि राजप्रासाद के पास से निकलना पड़े तो उसे घोड़े से उतरना पड़ता है। यदि कोई राजसभा में पैर रक्खे, और राजदर्शन करना चाहे, तो सिंहासन के सामने, हाथ पैर लम्बे करके, पृथ्वी पर गिर कर, उसे दण्ड प्रणाम करना पड़ता है!

कोरिया के वर्तमान नरेश का पवित्र नाम "ह्यनी ई" है। १८६४ में आप राजा हुए, और १८९७ में आपने राजराजेश्वर की पदवी धारण की। आपका वंश कोरिया में १३९२ ईसवी से चला आता है; आप अपने वंश के तेरहवें नृपराज हैं। आपके आधीन एक मंत्रिमण्डल है। वही क़ायदे क़ानून बनाता है; वही सब विषयों का विधि-निषेध करता है। उसके मन्तव्यों का विचार आप करते हैं और विचार करके उनको मञ्ज़ूर या नामञ्ज़ूर करते हैं। १८९४ तक ह्यनी ई का राजत्व, चीन की रक्षा में, अखण्डित बना रहा। परन्तु इस वर्ष जापान ने कोरिया के ऊपर चीन का स्वत्व स्वीकार न किया। चीन और जापान के युद्ध का यह भी एक कारण हुआ। इस युद्ध में जापान विजयी हुआ। चीन के साथ उसकी सन्धि हुई। सन्धि में चीन ने कोरिया पर अपने प्रभुत्व का दावा छोड़ा। तब से कोरिया ने जापान की रक्षा में रहना क़बूल किया। जापान की सहायता से, कोरिया में, इन सात आठ वर्षों में बहुत कुछ सुधार हुआ है।

चीन से सन्धिपत्र पर दस्तख़त कराके जापान जब निश्चिन्त हुआ, तब, उसने कोरिया-नरेश से कहा, कि सर्व-साधारण के सामने, और पितरों के पवित्र मन्दिर में, वे चीन की प्रभुता परित्याग करने की शपथ करें। कोरिया-नरेश बड़े संकट में पड़े। परन्तु कर क्या सकते थे? जापान का बल, जापान का रणकौशल, वे देख चुके थे। इसलिए उसकी आदेश उन्हें माननाही पड़ा। १८९५ के जनवरी की ८ तारीख़ इस शपथ के लिए नियत हुई। नरराज के महलों से लेकर पितृ-मन्दिर तक कोरिया के अश्वारोही सड़क पर दोनों ओर खड़े हुए। किस तरह? अपना और घोड़े का मुँह दीवारों की तरफ़; अपनी पीठ और घोड़े की दुम नरेश की तरफ़, सड़क की ओर! कुछ देर में राजप्रासाद से अनेक पताकाधारी निकले और मन्दिर को चले गये। उनके पीछे कोरिया-नरेश का सेवक-समूह पीली पोशाक और पीली टोपी पहने बाहर आया। अनन्तर नरेश का रेशमी लाल रङ्गवाला छाता देख पड़ा। उसके पीछे चार आदमियों के कन्धे पर रक्खी हुई एक कुरसी में कोरिया-नरेश पधारे। आप, सदा अपनी प्रसिद्ध राजसी कुरसी पर, १६ आदमियों के कन्धों के ऊपर, निकला करते हैं; परन्तु इस अवसर पर आप उस ठाठ से नहीं निकले। आप का चेहरा ज़र्द था; मुँह से नाउम्मेदी टपक रही थी। उनके पीछे युवराज, फिर मन्दारिन, फिर सेना-विभाग के अधिकारी, और अन्त में दूसरे लोग अपने अपने घोड़े और ख़च्चरों पर बाहर निकले। इस प्रकार नरेश ने देव-मन्दिर में जाकर चीन का सम्बन्ध त्याग करने की; जापान की प्रभुता स्वीकार करने की; और जापान की आज्ञा को सिर पर रखकर तदनुकूल कोरिया में सब प्रकार के संशोधन करने की क़सम खाई। इस प्रकार चीन-जापान के युद्ध रूपी नाटक का यह आख़िरी खेल ख़तम हुआ।

श्रीमती बिशप नाम की एक अंगरेज़ विदुषी ने "कोरिया और उसके पड़ोसी" (Corea and its Neighbours) नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने कोरिया का अच्छा हाल लिखा है। वे कहती हैं कि कोरिया की महारानी की उमर इस समय

कोई ४२ वर्ष की होगी। वे बहुत दुबली पतली हैं; परन्तु देखने में बुरी नहीं मालूम होतीं। उनके केश सिवार के समान हैं; कुछ काले हैं, कुछ भूरे। उनका रंग पीलापन लिये हुए है; मुँह पर वे मुक्ता-चूर्ण मलती हैं, जिससे उनके मुख पर एक प्रकार का लावण्य आ जाता है। उनको देखने से मालूम होता है कि वे समझदार हैं। जब वे बातचीत करती हैं, और वह बातचीत उनको अच्छी लगती है, तब उनके चेहरे में ऐसा रङ्ग आजाता है, जिसे सुन्दरता में दाखि़ल कर सकते हैं।

कोरिया-नरेश को जापान ने सभ्यता सिखलाना शुरू कर दिया है। दो वर्ष हुए आपने कोरिया में खनिज-विद्या का एक कालेज बनाने का विचार किया था। इसके प्रबन्धकर्ता कोरियावाले ही होनेवाले थे; परन्तु अध्यापक और यञ्जिनियर फ्रांस से बुलाने का इरादा था। नहीं मालूम यह कालेज बन गया या नहीं।

महारानी विक्टोरिया को एक बार कोरिया-राज ने एक सम्मान-सूचक खि़ताब, पदक समेत, भेजा। महारानी ने भी कोरिया के राजेश्वर को सम्मान देना चाहा। इसलिए उन्होंने जी० सी० आई० ई० नामक इस देश से सम्बन्ध रखनेवाली और विशेष आदर-सूचक पदवी उनको प्रदान की। इस पदवी-दान के समय "स्टैण्डर्ड" नामक समाचार पत्र का प्रतिनिधि कोरिया में उपस्थित था। अंगरेज़ी "कानसल" इस पदवी-सम्बन्धी पदक लेकर राज-प्रासाद में पहुँचा। उसने पहले राजेश्वर को बा-क़ायदा प्रणाम किया। फिर उसने अपने साथियों में से एक एक को मिलाया। राजेश्वर ने प्रत्येक की ओर कुछ सिर झुकाकर उनके नामों को दुहराया। तदनन्तर वार्तालाप आरम्भ हुआ। जहां पर यह उत्सव था, वहां ही, पास के एक कमरे में, कोरिया की महारानी और उनकी सहेलियां भी थीं। जो परदा पड़ा था वह इतना पतला था कि उसके भीतर से उनके वस्त्राभूषण बखूबी देख पड़ते थे। इस उत्सव के लिए जो तैयारियां की गई थीं उन्हें देखकर कोरिया-नरेश ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। जब आपको पदवी-दान हुआ, और आप तत्सम्बन्धी पदक आदि से सज्जित और सुशोभित किये गये, तब आपकी प्रसन्नता और तुष्टि का वारापार न रहा।

इस समय यही कोरिया-नरेश दो नृपति-सिंहों के पेच में पड़े हैं। यद्यपि उनसे, इन दोनों में से कोई भी, शत्रुभाव नहीं रखता, तथापि यह रणाग्नि, जो इस समय सुलग रही है, है उन्हींके देश को ग्रास करने के लिए। इस सिंह-युग्म की चपेट में उनका भी कुछ अनिष्ट हो जाय तो आश्चर्य नहीं; क्योंकि उनकी प्रजा और सेना ने, सुनते हैं, बलवा शुरू कर दिया है, और विदेशियों की मारकाट के लिए हथियार उठाया है।

यह लेख छप जाने पर मालूम हुआ कि रूस और जापान की लड़ाई ८ फरवरी की रात से शुरू होगई। इस लड़ाई में अभी तक जापान ही की जीत है।

फ़ारसी-कवि हाफ़िज़।

हाफ़िज़ फ़ारसी का बहुत बड़ा कवि हो गया है। उसे फ़ारसी के कवियों का शाहिन्शाह कहना चाहिए। गुलिस्ताँ और बोस्ताँ के लिखनेवाले शेख़ सादी से भी, कविता में, उसकी बराबरी नहीं की जा सकती। कविता से जहां तक सम्बन्ध है हाफ़िज़ को फ़ारसी का कालिदास कहना चाहिए। हाफ़िज़ में कवित्व-शक्ति अपूर्व थी। वह स्वाभाविक कवि था। उसकी उक्तियां ऐसी भावगर्भित और ऐसी नैसर्गिक हैं कि पढ़तेही वे हृदय पर विलक्षण प्रभाव उत्पन्न करती हैं। प्रेम, पूज्यभाव और आतङ्क—सभी—यथास्थान मन में आविर्भूत हुए बिना नहीं रहते। ऐसे गम्भीर भाव, ऐसी हृदयद्रावक उक्तियाँ, सरल होकर भी ऐसी परिमार्जित भाषा, फ़ारसी में, हाफ़िज़ के "दीवान"

में ही मिल सकती हैं; अन्यत्र बहुत कम। परन्तु ऐसे महाकवि के जीवन का बहुतही कम वृत्तान्त जाना गया है।

हाफ़िज़ का नाम मुहम्मद शम्सुद्दीन है। हाफ़िज़ उसका तख़ल्लुस था। अपने दीवान में उसने इस तख़ल्लुस का बहुतही अधिक प्रयोग किया है। इसीलिए वह अपने मुख्य नाम से प्रसिद्ध नहीं; किन्तु तख़ल्लुस से ही प्रसिद्ध है। हाफ़िज़ के माता-पिता अच्छी दशा में थे; परन्तु हाफ़िज़ ने दरिद्रावस्था ही में अपनी उमर बिताई। यह बात उसकी कविता से सूचित होती है। वह फ़ारस के शीराज़ नगर में, ईसा की चौदहवीं सदी के आरम्भ में, उत्पन्न हुआ; और वहीं बुड्ढा होकर मरा। यह ठीक ठीक नहीं मालूम कि किस सन, किस महीने, और किस तारीख़ को उसका जन्म हुआ। परन्तु उसके मरने का समय निश्चयता-पूर्वक ज्ञात है। शीराज़ में उसकी जो क़ब्र है उसपर ७९१ हिजरी, अर्थात् १३७३ ईसवी, खुदा है। और एक शायर ने उसके मरने की तारीख़ भी यह लिखी है—

چراغ اهل معنی خواجه حافظ
که شمعے بود از نور تجلی
چودر خاک مصلی یافت منزل
بجو تاریخش از خاک مصلی

चिराग़े अहले मानी ख़्वाजः हाफ़िज़
कि शमए बूद अज़ नूरे तजल्ला
चुदर ख़ाके मुसल्ला याफ्त मंज़िल
बिजो तारीख़शज़ ख़ाके मुसल्ला

अर्थात्

अर्थवेत्ताओं के दीपक ख़्वाजः हाफ़िज़ ने, जो कि खुदा के तेज का मशआल था, ख़ाके मुसल्ला (ईदगाह या नमाज़ पढ़ने की जगह) में स्थिति पाई। उसकी तारीख़ ख़ाके मुसल्ला में ढूंढ़ो। (ख़ाके मुसल्ला के अङ्क अबजद के क़ायदे से ७९१ होते हैं) इससे स्पष्ट है कि हाफ़िज़ को मरे कोई ५३० वर्ष हुए। परन्तु उसे मरा क्यों कहना चाहिए। जब तक फ़ारसी भाषा का अस्तित्व है; और जब तक हाफ़िज़ का अलौकिक कवित्व उसके दीवान में विद्यमान है; तब तक वह मृत नहीं; वह जीवित है। जिसका यशः शरीर बना है उसके पार्थिव-शरीर के नाश हो जाने से कोई क्षति नहीं।

हाफ़िज़ को अपनी जन्म-भूमि शीराज़ से बड़ा स्नेह था। उसने उसकी बहुत प्रशंसा की है। उसे एकान्तवास अधिक पसन्द था। साहित्य-प्रेम उसमें विलक्षण था। एकान्त में पुस्तकावलोकन और कविता-निर्म्माण में ही वह अपना समय बहुत करके व्यतीत करता था। शीराज़, यज़्द, किरमान और इस्पहान के अधिकारी शाह शुजा और शाह मन्सूर का वह विशेष कृपापात्र था। १३९३ ईसवी में तैमूर ने शीराज़ पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। इस लड़ाई में, हाफ़िज़ के पृष्ठ-पोषक पूर्वोक्त शाहद्वय की हार हुई। उस समय, सुनते हैं, हाफ़िज़ शीराज़ ही में था। हाफ़िज़ ने, एक पद्य में, अपने एक बहुत प्यारे शीराज़ी तुर्क के कपोल पर के तिल के लिए समरक़न्द और बोख़ारा नाम के दो प्रसिद्ध शहर दे डालने की उक्ति कही थी। वह पद्य ऐसा है—

اگر آن ترک شیرازی بدست آرد دل مارا
بخال هندوش بخشم سمرقند و بخارا را

अक्षरान्तर—

अगर आं तुर्के शीराज़ी बदस्तारद दिले मारा।
बख़ाले हिन्दवश बख़्शम् समरक़न्दो बुख़ारा रा॥

ये दोनों शहर तैमूर के थे। तैमूर ने हाफ़िज़ का यह पद्य पढ़ा था। अतएव उसने हाफ़िज़ को अपने सम्मुख लाये जाने का हुक्म दिया। हाफ़िज़ लाया गया। उसे देखकर तैमूर ने पूछा—"क्या तू वही शख़्स है जिसने मेरे दो मशहूर शहर एक तुर्क के तिल पर दे डालने का साहस किया?" हाफ़िज़ ने, इस प्रश्न का उत्तर बड़ीही नम्रता से दिया। उसने कहा—"हां; जहाँपनाह! ऐसीही उदारताओं ने तो मुझे इस दरिद्रावस्था को

पहुँचा दिया कि, इस समय, मैं आप की दया का भिखारी होने आया हूं"। इस उत्तर को सुनकर, हाफ़िज़ की प्रत्युत्पन्न-मति पर तैमूर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पारितोषिक देकर सम्मान पूर्वक उसने विदा किया। यह बात कहां तक सच है, नहीं कह सकते; क्योंकि तैमूर के द्वारा शीराज़ लिये जाने के पहले ही हाफ़िज़ की मृत्यु हो चुकी थी।

थोड़ीही उम्र से हाफ़िज़ ने कविता और दर्शन-शास्त्र में अभ्यास आरम्भ किया; और शीघ्रही इन शास्त्रों में वह पारदर्शी हो गया। शेख़ महम्मद अत्तार नाम के प्रसिद्ध फ़क़ीर से उसने दर्शनशास्त्र सीखा। कुछ दिनों में हाफ़िज़ भी इन शेख़ साहब का अनुयायी हो गया। उसपर शाह के वज़ीर हाजी क़यामुद्दीन की बड़ी कृपा थी। उसने विशेष करके हाफ़िज़ ही के लिए एक कालेज खोला! उस कालेज में हाफ़िज़ क़ुरान पढ़ाने पर मुक़र्रर हुआ। परन्तु हाफ़िज़ का स्वभाव बहुतही उच्छृङ्खल था। वह मद्यप भी था। उसे बाहरी दिखाव बिलकुल पसन्द न था। वह कहता था कि अमीर और ग़रीब दोनों का ईश्वर एकही है। उसके लिए मसजिद, मन्दिर और गिर्जाघर तुल्य थे। इसलिए उसके साथी अध्यापकों तथा और और विद्वानों ने भी हाफ़िज़ के आचरण पर कटाक्ष करना आरम्भ किया। हाफ़िज़ से भी मौन नहीं रहा गया। उसने भी अपनी कविता में उन लोगों की ख़ूबही दिल्लगी उड़ाई; और उनकी अन्ध-धर्म्मभीरुता, उनके दाम्भिक आचरण और उनके मिथ्या विश्वासों पर मौक़ा हाथ आतेही बड़ेही मर्म्म-भेदी व्यङ्ग कहे। हाफ़िज़ को लोग कुछ कुछ नास्तिक समझते थे। और और बातों के सिवा इसका एक कारण यह भी था कि हाफ़िज़ ने मन्सूर नाम के पहुँचे हुए फ़क़ीर की प्रशंसा में कविता की थी। यह फ़क़ीर अपने को "अनल हक़" (अहं ब्रह्मास्मि) कहता था। बड़ी दुर्दशा करके उसको फाँसी दी गई थी; परन्तु, अन्त तक वह "अनल हक़" ही कहता रहा।

हाफ़िज़ की कीर्त्ति बहुत शीघ्र देश देशान्तरों में फैल गई। उसकी मनोमोहिनी कविता का रस पान करके लोग मत्त होने लगे। अनेक शक्तिशाली बादशाहों और अमीरों ने उसे अच्छे अच्छे पारितोषिक भेजे। किसी किसीने हाफ़िज़ को बड़े प्रेम से अपने यहां आने का आह्वान दिया। सुनते हैं दक्षिण में, बीजापुर के नरराज महमूद शाह बहमनी ने भी हाफ़िज़ को अपने यहां इस देश में पधारने के लिये आमन्त्रण के साथ जहाज़ भेजा था। इस आमन्त्रण को हाफ़िज़ ने स्वीकार भी कर लिया था। यहाँ तक कि हिन्दोस्तान को आने के लिए वह शीराज़ से चल भी दिया; परन्तु सामुद्रिक सफ़र में उसे कुछ कष्ट हुआ। इसलिए कुछ दूर आकर वह शीराज़ को लौट गया। उस समय बंगाल के मुसल्मान सूबेदार ने भी, सुनते हैं, उसे बुलाया था; परन्तु उसने आदर पूर्वक इस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। यज़्द के अधिकारी यहिया इब्न मुज़फ़्फ़र के बहुत कहने सुनने पर एक बार हाफ़िज़ उसके यहां गया; परन्तु वहां जाने में उसे प्रसन्नता न हुई। थोड़ेही दिनों में वह शीराज़ लौट आया; और फिर कभी उसने उस शहर को नहीं छोड़ा। जब तक वह यज़्द में था, शीराज़ को लौटने के लिए वह बहुतही उत्सुक था।

हाफ़िज़ के गृहस्थाश्रमी जीवन के विषय में बहुतही कम बातें ज्ञात हैं। उसने एक कविता में, अपनी स्त्री की और दूसरी में अपने अविवाहित पुत्र की मृत्यु का कारुणिक उल्लेख किया है। यह भी सुना जाता है कि शाख़े-नबात (इक्षुलता या मिश्री की क़लम) नामक एक सु-स्वरूपा रमणी पर हाफ़िज़ अनुरक्त था। उसकी बहुतसी शृङ्गारिक कविता उसीको लक्ष्य करके कही गई है। हाफ़िज़ के दीवान को कहीं भी मनमानी जगह पर खोलकर लोग शुभाशुभ प्रश्न देखते हैं; और वहां पर निकले हुए पद्य या पूरी ग़ज़ल के भावार्थ से प्रश्न का अर्थ निकालते हैं। ऐसा करने के पहले लोग एक मिसरा पढ़ते हैं जिसमें हाफ़िज़ को यथार्थ बात

बतलाने के लिए शाखे-नबात की क़सम दिलाते हैं। वह मिसरा यह है—

قسم شاخ نبات است ترا اے حافظ
فال ما راست بگو تا شودم باتو یقیں

अक्षरान्तर

क़समे शाखेनबातस्त तुरा ऐ हाफ़िज़।
फ़ाले मा रास्त बिगो ता शवदम बाता यक़ीं॥

इससे भी हाफ़िज़ ग्रैार शाखे-नबात का सम्बन्ध सूचित होता है। सुनते हैं, नादिरशाह को दीवाने-हाफ़िज़ पर इतना विश्वास था कि बिना उसके द्वारा शुभाशुभ का विचार किये वह कोई चढ़ाई या लड़ाई न करता था।

हाफ़िज़ शिया सम्प्रदाय का मुसल्मान था। वह हदीस अर्थात् महम्मद साहब की निज की कही हुई बातों पर विश्वास न रखता था। उसने अपनी कविता में ऐसी ऐसी बातें भी कही हैं जिनको धार्म्मिक मुसल्मान अनुचित ग्रैार धर्म्मविरुद्ध समझते हैं। इन कारणों से जब हाफ़िज़ की मृत्यु हुई तब शीराज़ के धर्म्माचार्यों में इस बात का विवाद उठा कि हाफ़िज़ का शव मुसल्मानी नियमों के अनुसार उचित स्थान में समाधिस्थ किया जाना चाहिए अथवा नहीं। इसका फ़ैसला हाफ़िज़ ही के दीवान पर रक्खा गया। यह निश्चय हुआ कि उस पुस्तक का कोई पन्ना सहसा खोला जाय ग्रैार वहां जो कुछ निकलै उसीके अनुसार काम किया जाय। निदान ऐसा ही किया गया। हाफ़िज़ के दीवान का जो भाग खोला गया उसमें लिखा था—"हाफ़िज़ के जनाज़े (रथी) से अपना पैर पीछे मत हटाओ; क्योंकि, यद्यपि, वह पापों में डूबा हुआ है, तथापि वह बिहिश्त में अवश्य दाख़िल कर लिया जायगा"। अतएव वह मुसल्मानों के नियमानुसार यथा-विधि समाधिस्थ किया गया। हाफ़िज़ के समाधि-स्तम्भ पर उसीके कहे हुए दो पद्य खुदे हैं; ग्रैार वहीं उसका दीवान रक्खा रहता है। उसकी समाधि के दर्शन के लिए लोग दूर दूर से आते हैं; ग्रैार समाधि पर वे जो सामग्री चढ़ाते हैं, उससे वहां रहनेवाले दरवेशों (फ़क़ीरों) का अच्छी तरह से जीवन-निर्वाह होता है। ये दरवेश दीवाने-हाफ़िज़ से अच्छी अच्छी उक्तियां सुनाकर यात्रियों को प्रसन्न करते हैं। जिस जगह हाफ़िज़ की समाधि है उसका नाम ख़ाके-मुसल्ला है।

हाफ़िज़ ने यद्यपि ग्रैार कई छोटी छोटी किताबें लिखी हैं; परन्तु उसका दीवान सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वह हाफ़िज़ की कही हुई उत्तमोत्तम ग़ज़लों का संग्रह है। प्रत्येक ग़ज़ल में पांच से लेकर सोलह बैत तक हैं। प्रायः प्रत्येक अन्तिम बैत में हाफ़िज़ ने अपना नाम दिया है। हाफ़िज़ की ग़ज़लें वर्ण क्रमानुसार रक्खी गई हैं। इससे यह नहीं जाना जाता कि कौन ग़ज़ल पहले ग्रैार कौन पीछे बनी है। हाफ़िज़ की कविता के विषय में बहुत मतभेद है। कोई कोई कहते हैं कि उसमें केवल पार्थिव प्रेम ग्रैार लौकिक बातों का वर्णन है। परन्तु, कोई कोई इसके प्रतिकूल अपना मत देते हैं। वे कहते हैं कि हाफ़िज़ ने जो कुछ कहा है सब अलौकिक ग्रैार अपार्थिव विषय में कहा है; अर्थात् उसकी कविता केवल हक़ानी है; वह केवल ईश्वर-विषयक है। यह मत सूफ़ी सम्प्रदाय के मुसल्मानों का है। वे हाफ़िज़ की कविता को ईश्वर पर घटाते हैं ग्रैार कहते हैं कि उसका यथार्थ भाव समझने की कुञ्जी केवल उन्हींके पास है। परन्तु जिन्होंने हाफ़िज़ की कविता का बहुत कुछ विचार किया है, ग्रैार चिरकाल तक उसके परिशीलन में निमग्न रहे हैं, उनका कथन है कि, उसमें पार्थिव विषय भी हैं, ग्रैार अपार्थिव भी हैं। उसका सृष्टि सैान्दर्य-वर्णन, उसकी मनोमोहिनी शृङ्गारिक उक्तियां, ग्रैार मद्य-प्राशन विषयक उसके विलक्षण कथन आदि का विचार करके, विद्वानों का मत है कि इन सब बातों को हाफ़िज़ ने ईश्वर को लक्ष्य करके नहीं कहा। इन बातों का साधुता अर्थात् फ़क़ीरी से बहुत कम सम्बन्ध है।

हाफ़िज़ की कविता नितान्त स्वाभाविक है। उसकी कल्पनाशक्ति बहुतही उद्दण्ड है। उसकी किसी किसी कल्पना को सुनकर हृदय में आतङ्कसा उत्पन्न होजाता है। उसने कोई कोई बात बहुतही अद्भुत कही है। उसके दीवान की कई आवृत्तियां बर्लिन, लण्डन और पेरिस में छपी हैं। उसकी कविता के अनुवाद भी विदेशी भाषाओं में हुए हैं। सर विलियम जोन्स और अध्यापक कावेल, यमरसन और डि हर बेलाट आदि ने उसपर बहुत कुछ लिखा है। बम्बई के श्रीयुक्त के० यम० जौहरी, यम० ए०, यल० यल० बी०, ने भी दीवाने हाफ़िज़ का अंगरेज़ी में अनुवाद किया है। फ़ारस में हाफ़िज़ की कविता का इतना अधिक प्रचार है कि वहां के पढ़े लिखे सामाजिक मनुष्यों को वह कण्ठ रहती है। ग़रीब और अमीर सभी उसकी कविता का आदर करते हैं। फ़ारस के रेगिस्तान में दूर दूर सफ़र करनेवाले ख़च्चरों और ऊंटों के क़ाफ़िले हाफ़िज़ की ग़ज़लों को बड़े प्रेम से गाते हैं; और तद्द्वारा मार्ग का श्रम परिहार करते हैं। हाफ़िज़ फ़ारस का सबसे अधिक प्यारा और प्रसिद्ध कवि है।

फ़ारस के विद्वान् समालोचकों का मत है कि हाफ़िज़ की कविता निकम्मी—दूषित—ठहराई जा सकती है; परन्तु उसकी तुलना और किसी कविता से नहीं की जा सकती। उसकी कविता अनन्वयालङ्कार का सच्चा उदाहरण है। उसकी समता उसीसे हो सकती है; और किसीसे नहीं। वह वही है। हाफ़िज़ ने जो कुछ कहा है नयाही कहा है। उसकी उक्तियों में उच्छिष्टता नहीं है। उसमें दोष हो सकते हैं; परन्तु वैसे दोष उसीमें पाये जा सकेंगे; और कहीं नहीं। उसकी कविता में जो रमणीयता है वह उसीमें है। उसे अन्यत्र ढूंढ़ना व्यर्थ है। हाफ़िज़ के बराबर प्रतिभाशाली कवि होना अत्यन्त दुर्लभ है। उसके समान ललित और मधुर-भाषी दूसरा कवि, संस्कृत को छोड़, और भाषाओं में नहीं पाया जाता। हाफ़िज़ की कविता का आनन्द, उसके दीवान को फ़ारसी ही में पढ़ने से, अच्छी तरह आ सकता है। अनुवाद में वह रस नहीं आता। हाफ़िज़ को, पण्डितराज जगन्नाथ राय की तरह, अपनी कविता का गर्व भी था। उसने कई जगह, इस विषय में, गर्वोक्तियां कही हैं—ये गर्वोक्तियां चाहे सचमुच ही अभिमानजन्य हों; और चाहे यों ही स्वाभाविक रीति पर उसके मुँह से निकल गई हों। हाफ़िज़ के मुँह से उसकी गर्वोक्तियां भी अच्छी लगती हैं। वे उसी प्रकार निकली हैं जैसे फूलों से मकरन्द टपकता है; अथवा इक्षु से रस निकलता है।

यहां पर, हम, हाफ़िज़ की रसवती कविता के दो चार नमूने देना चाहते हैं। और साथही मुन्शी नानकचन्द जी का किया हुआ पद्यात्मक अनुवाद भी हम प्रकाशित करते हैं—

(१)

صبا اگر گذرے افتدت بکشور دوست
بیار نفحۂ از گیسوے معنبر دوست

अक्षरांतर

सबा अगर गुज़रे उफ़्दत् ब किश्वरे दोस्त।
बियार नफ़हए अज़ गेसुए मुअम्बरे दोस्त॥

अनुवाद

पवन मीत जो कभी जाय तू मेरे प्राण प्यारे के देश।
उसके केश सुगन्धित से कुछ ले आना सुगन्ध का लेश

(२)

بجان اوکہ بشکرانہ جان بر افشانم
اگر بسوے من آری پیام از بر دوست

अक्षरांतर

बजाने ऊ कि बशुक्रानः जाँ बरफ़्शानम्।
अगर बसूये मन आरी पयामे अज़ बरे दोस्त॥

अनुवाद

प्यारेकी है शपथ करूं मैं तुझ पर नौछावर निज प्राण
एक संदेसा प्राणनाथ का जो तू मुझको देवै आन॥

(३)

اگر چنانچہ دراں حضرتت نباشد بار
براے دیدہ بیاور غبارے از در دوست

अक्षरांतर

बगर चुनाँचः दराँ हज़रतत न बाशद बार।
बराय दीदः बियावर ग़ुबारे अज़ दरे दोस्त ॥

अनुवाद

और न जो तू जाने पावै उसके सन्मुख किसी प्रकार।
नैनों के अंजन को रजकण ला दे उसका द्वार बुहार ॥

(४)

دل شوق لبت مدام دارد
یارب زلبت چه کام دارد

अक्षरांतर

दिल शौके लबत मुदाम दारद।
यारब ज़िलबत चिकाम दारद ॥

अनुवाद

मन में तेरे अधर की रहत निरंतर चाह।
कौन हेत ? जानै हरी; कछु न याकी थाह ॥

(५)

جان شربت مهرو بادهٔ شوق
در ساغر دل مدام دارد

अक्षरांतर

जाँ शरबते महरो बादए शौक़।
दर साग़रे दिल मुदाम दारद ॥

अनुवाद

मधुरासव-अनुराग, अरु प्रेम-बारुणी-बार।
अंतर-घट में भर रहे निज मन मुकुर निहार ॥

(६)

شوریدهٔ زلف یار دائم
در دام بلا مقام دارد

अक्षरांतर

शोरीदए ज़ुल्फे यार दायम्।
दर दामे बला मुक़ाम दारद ॥

अनुवाद

घुघरारी लट की लगी जाके मनकों लाग।
नाग पाश में वह रहै बँध्यो, सकल सुख त्याग ॥

(७)

بایار کجا نشیند آنکو
اندیشه خاص و عام دارد

अक्षरांतर

बायार कुजा नशींनद आँ को।
अन्देशए ख़ासो आम दारद ॥

अनुवाद

प्रीतम संग कैसे करै सो निःशंक विहार।
लोकलाज कुल कानि सों जो भयभीत अपार ॥

(८)

خرم دل آن کسے که صحبت
بایار علے الدوام دارد

अक्षरांतर

ख़ुर्रम दिले आँ कसे कि सुहबत।
बायार अलद्दवाम दारद ॥

अनुवाद

सुखी सोइ या जगत में कहत सयाने लोग।
जेहि सँग प्रीतम को रहत बिन अंतर संयोग ॥

(९)

حافظ چودمے خوش است مجلس
اسباب طرب تمام دارد

अक्षरांतर

हाफ़िज़ चुदमे खुशस्त मजलिस।
अस्बाबे तरब तमाम दारद ॥

अनुवाद

हाफ़िज़ सो क्षण धन्य है कटै जो प्रीतम संग।
सब सुखसाज सजे रहैं बाढै हिये उमंग ॥

भावुक मुसल्मानों का मत है कि इन पद्यों में प्यारे, प्राणप्यारे, प्रिय, प्रियतम आदि शब्द और सम्बोधन ईश्वर के लिए हैं।

हरि-स्मरण।

बीती रैन छिपे तारा-गण,
प्रातकाल अब होता है।
सुमिरन कर ईश्वर का उठकर,
क्यों तू ग़ाफ़िल सोता है ॥ १ ॥

ध्यान लगा सबके स्वामी का,
वृथा जन्म क्यों खोता है।
वही जगत को पैदा करता,
वही छिनक में खोता है ॥ २ ॥

नहीं किसीका कुछ पुरुषारथ,
वही करै सो होता है।
हानि लाभ, यश को, अपयश को,
केवल वही सँजोता है ॥ ३ ॥

रैन दिवस माया में फँसकर,
पाप भार क्यों ढोता है ?
काल कलेऊ करै एक दिन,
लगै नरक में गोता है ॥ ४ ॥

पेट काज जग को बहकावै,
डूबै वक्ता श्रोता है।
लिये किताब बग़ल में डोलै,
मरे हुओं को रोता है ॥ ५ ॥

वह तो जगतपिता है उसका,
नहिं कोई इकलौता है।
नहिँ दुश्मन नहिँ दोस्त किसीका,
नाता नहीं न गोता है ॥ ६ ॥

नहीं सिफ़ारिश चलै किसीकी,
यथा कर्म्म फल होता है।
पाकर मानुष देह मनोहर,
उसे व्यर्थ क्यों खोता है ? ॥ ७ ॥

सबमें व्यापक, सबसे न्यारा,
वही उगाता बोता है।
ज्ञान-चक्षु से देख हृदय में,
भटक भटक क्यों रोता है ॥ ८ ॥

नहिँ केवल मसजिद, गिरिजा में,
हर जा में हर होता है।
काबे में क्या ख़ाक़ मिलै जो,
हृदय शुद्ध नहिँ होता है ॥ ९ ॥

हज करौ या तीरथ जावौ,
कहीं नहीं कुछ होता है।
सुखानन्द क्या लहै भला जब,
माया जाल डुबोता है ॥ १० ॥

नानकचन्द (सुखानन्द)

वसन्त।

[१]

कुसुमितलतिका ललित तरुन बसि क्यों छबिछावत?
हे रसालगन! बौरि व्यर्थ क्यों सोग बढ़ावत ?
हे कोकिल! तजि भूमि नाहिं क्यों अनत सिधारी?
कोमल कूक सुनाव बैठि अजहुं तरु डारी ॥

[२]

मथुरा, दिल्ली अरु कनौज के विस्तृत खँड़हर;
करत प्रति-ध्वनि, आज दिवसहु निज कम्पित स्वर।
जहँ गोरी, महमूद केर पद चिन्ह धूरि पर;
दिखरावत, भरि नैन नीर, इतिहास-विज्ञ नर ॥

[३]

और विगत अभिलाष सकल, केवल इक कारन;
जन्म-भूमि अनुराग बाँधि राख्यो तोहि डारन।
तुव पूर्वज यहि ठौर बैठि रव मधुर सुनावत;
पूर्व-पुरुष सुनि जाहि हमारे अति सुख पावत ॥

[४]

तिनके हम सन्तान; पाछिलो नात बिचारी;
कोकिल, दुख-सहचरी बनी तू रही हमारी।
हे हे अरुण पलाश! छटा बन काहि दिखावत ?
कोउ दृग नहिँ अन्वेषमान अब तुव दिसि धावत ॥

[५]

करि सिर उच्च कदंब रह्यो तू व्यर्थ निहारो;
नहीं गोपिका कृष्ण कहीं तुव छाँह बिहारी।
रे रे निलज सरोज! अजहुं निकसत लखि भानहिँ;
देश-दुर्दशा-जनित दुःख चित नेकु न आनहिँ ॥

[६]

ये हो मधुकरवृन्द! मोहि नहिँ कछु आवत कहि;
कौन मधुरता लोभ रह्यो बसि दीन देश यहि।

चपल-चमेली अंग स्वेत-अभरन क्यों धारो ?
मुग्ध होन की क्रिया भूलिगो चित्त हमारो ॥

[७]

दीन कलिन सों हे समीर ! बरबस क्यों छीनत;
मधुर महक, हित नाक हीन हम हतभागी नत।
एक एक चलि देहु नाहिँ क्यों यह भुव तजि के ?
हम हतभागे लोग योग नहिँ तुव संगति के ॥

[८]

विगत-दिवस-प्रतिबिम्ब हाय सम्मुख तुम लावत;
भारत-संतति केर विरह चौगुनो बढ़ावत।
अहो विधाता वाम दया इतनी चित लावहु;
देश काल ते ऋतु वसंत को नाम मिटावहु ॥

[९]

नहिँ यह सब दरकार हमें, चहिए केवल अब
उदर भरन हित अन्न, और किन हरन होहि सब।
नहिँ कछु चिन्ता हमैं चोन्ह-गौरव रखिबे की;
नहीं कामना हमें "आपनो" यह कहिबे की ॥

रामचन्द्र शुक्ल।

स्वर्ग की झलक।

[बालकों के लिए।]

लक्ष्मीनारायण को लोग लक्खू बाबू कहते हैं। दादी से कहानी सुने बिना लक्खू बाबू को नींद नहीं आती। शाम होतेही लक्खू दादी के पास जा बैठता और तरह तरह के क़िस्से कहानी सुनता। दादी सदा देवी देवताओं की कहानी कहती। दादी की कहानी में स्वर्ग की बात आती; इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, सूर्य्यलोक, यमलोक, किन्नर, गन्धर्व्व, अप्सरा, ऋद्धिसिद्धि, प्रह्लादचरित्र, ध्रुवचरित्र, सुदामाचरित्र इत्यादि भाँति भाँति की कथा होती। लक्खू मन लगाकर सब सुनता। सुनते सुनते सोचता मैं क्या स्वर्ग नहीं देख सकता। स्वर्ग देखने की लक्खू को बड़ी लालसा हुई।

लक्खू के नवलकिशोर चाचा ने लक्खू को चित्रों की एक पोथी दी थी। लक्खू चित्र बहुत चाहता था। वह घर के एक कोने में बैठकर चित्र देखता था। पहला चित्र इन्द्रलोक का है। इन्द्र महाराज सिंहासन पर बैठे हैं; सामने परियां नाच रही हैं। सिंहासन के चारों ओर गन्धर्व्व बालकगण खड़े हैं; उनके मुसकुराते मुख क्याही सुन्दर हैं। लक्खू को इच्छा हुई कि मैं भी इन लड़कों के साथ खेलूं। यहां तक कि इधर उधर देखकर उसने लड़कों से कहा–"हमसे यारी करोगे ? हम लड्डू देंगे"। और एक तसवीर है। कमल-कानन में सरस्वती जी विराजमान हैं; उनके हाथ में बीना है; सामने छोटे छोटे बालक बैठकर पढ़ रहे हैं। सरस्वतीजी उनको पढ़ाती हैं। लक्खू को गुरूजी के पास बैठकर पढ़ना नहीं सुहाता। गुरूजी बहुत डांटते हैं। तसवीर के लड़कों के साथ बैठकर उसे पढ़ने की इच्छा हुई। तीसरा चित्र वैकुण्ठ का है। कमलनयन विष्णु भगवान बालक ध्रुव का हाथ अपने हाथ में लिये लक्ष्मी जी के सामने खड़े हैं; लक्ष्मी जी बड़े प्यार से दोनों हाथ बढ़ाकर ध्रुव को गोद में ले रही हैं। ऐसेही अनेक मनोहर चित्र देखकर लक्खू बाबू की स्वर्ग देखने की लालसा प्रबल हो उठी। किसकी नहीं होती ?

लक्खू ने विचारा कि दादी स्वर्ग देखने का उपाय जानती होगी। एक दिन उसने दादी से पूछा–"अच्छा दादी! यह जो आकाश दिखाई देता है कि नहीं; और उसमें चांद उगता है कि नहीं; उसीके भीतर स्वर्ग है न ?" दादीने कहा–"हां बच्चा ! उसीके भीतर स्वर्ग है"।

"क्यों दादी ! स्वर्ग दिखाई क्यों नहीं देता ?"

"इस युग के लोग स्वर्ग नहीं देख सकते। कलियुग चढ़ा है; चारों ओर पाप हो रहा है। पहले युग के लोगों से देवता बातचीत करते थे। वे स्वर्ग देखने पाते थे"।

लक्खू ने अपने नवलकिशोर चाचा से पूछा–"क्यों चाचा ! आकाश के भीतर कोई जा सकता है कि नहीं ?"

"धत् पागल ! आकाश के पास जाने से आदमी मर जाता है। आकाश तो केवल धुआं है"।

"तब वहां देवता कैसे रहते हैं ?"

लक्खू बाबू के चाचा ने हँस कर कहा–"देवता अब तक वहां थोड़े पड़े हैं; धुएं के भीतर दम घुटकर कभी के मर गये। तेंतीस करोड़ देवताओं में केवल एक देवता बचे हैं; मगर वह भी अब इधर उधर की खेंचतान में हैं; वह भी अब नहीं नहीं हो रहे हैं"।

लक्खू बाबू ने समझा कि चाचा दिल्लगी कर रहे हैं।

सूर्य्य की एक किरण लक्खू के बक्स में घुसकर खेल रही है। कभी बरामदे के संगमर्मर पर जाकर रंगबरंगे रंग छिटकाती है; कभी हट जाती है; फिर आती है। लक्खू एकटक बक्स की ओर देखता स्वर्ग देखने का उपाय सोचता था। किरण को देखकर अचानक उसे एक बात सूझी। किरण स्वर्ग में रहती है; वह बता सकती है कि स्वर्ग कैसे मिलेगा। बालबुद्धिही तो ठहरी, चट किरण को उसने हथेली से धर दबाया, और कहने लगा– "ए! तुम मेरा खिलौना लेकर खेलती हो। आज तुम्हें नहीं छोड़ूंगा; पहले वादा करो कि मुझे स्वर्ग दिखाओगी"।

किरण हँसते हँसते लक्खू की उँगलियों के बीच से भाग गई। लक्खू बाबू ने मानो किसीको यह कहते सुना–"सहज में स्वर्ग नहीं देख सकते। दिव्यदृष्टि पाने की चेष्टा करो तब स्वर्ग दिखाई देगा"।

दिव्यदृष्टि होने ही से स्वर्ग दिखाई देता है ? तब फिर क्या, लक्खू के पास दो रुपये थे। बक्स में से रुपये निकालकर लक्खू मुरारी की दूकान पर दौड़ा गया। "मुरारी मुरारी! दिव्यदृष्टि है ?"

"नहीं भैया! हम लोग दिव्यदृष्टि नहीं बेचते। जलेबी चाहिये ? ताज़ी हैं ?"

"नहीं नहीं, जलेबी नहीं चाहिये।"

एक दिन लक्खू बगीचे में टहलता था। एक टिड्डा आकर घास पर बैठ गया। लक्खू तितली पतङ्गे देखकर बहुत खुश होता। उसने चुपके से जाकर टिड्डे को पकड़ लिया। अरे, यह कौन गारहा है ? यह तो बड़ी अच्छी तान अलापता है। कौन है कौन ? ऐसा मोठा तो लक्खू का तोता भी नहीं बोलता। लक्खू ने चौकन्ने होकर इधर उधर देखा। अरे, यह तो मेरी मुट्ठी में टिड्डाही भनभना रहा है। टिड्डे की पीठ पर एक बड़ी सुन्दर स्त्री बैठी है। अहा, उसका सिङ्गार कैसा बढ़िया है; खूब सजधज कर रङ्गीन सारी पहने बैठी है। वह लक्खू से कहती थी—

"अरे बेटा! किसी को सताना अच्छा नहीं, टिड्डे को छोड़ दो; वह बड़ी दूर से आकर थक गया है; इसीसे यहाँ बैठ कर विश्राम लेता था। सन्ध्या हुई छोड़ दो; हम लोगों को बहुत दूर जाना है।"

लक्खू ने आश्चर्य्य से पूछा–"तुम्हारा घर कहां है ? यहां से कितनी दूर है ?"

"यह जो आकाश में एक रोशनी की जगमगाहट देखते हो; वहीं हमारा घर है"। यह कहकर स्त्री ने लक्खू बाबू को एक तारा दिखाया।

"ऐं! तुम स्वर्ग में रहती हो ? तब तुमको नहीं छोड़ूंगा। एक बार मुझे स्वर्ग दिखा दो, तो छोड़ दूंगा; नहीं तो अपने बक्स में बन्द करके ऊपर से ताला लगा दूंगा"।

"सुन्दरी बड़े फेर में पड़ी। वह और कोई नहीं, स्वर्ग की एक परी है। लक्खू बाबू ने उसको सोच में पड़ी देखकर कहा, क्या सोचती हो ? नहीं दिखा सकोगी ? अच्छा स्वर्ग मत दिखाओ; मुझे दिव्यदृष्टि देदो; मैं तुम्हें छोड़ देता हूं"।

"दिव्यदृष्टि का दाम बहुत है"।

"कितना दाम है ? अभी तुम को रुपया देता हूं"।

परी ने कहा–"पागल कहीं का! स्वर्ग की चीज़ क्या तुम्हारे इस रुपये से मिलेगी ? उसके लिये स्वर्ग का रुपया चाहिये। अच्छा, एक बात सुनो। तुमको एक डब्बी देती हूं। जब तुम कोई अच्छा काम करोगे तब एक रुपया इस डब्बी में आपसे आप आ जायगा। मगर जब तुम कोई बुरा काम

करोगे तब जमा में से एक रुपया आप उड़ जायगा। जब तुम्हारे पास डिबिया भर रुपया हो जायगा तब मैं आकर तुमको दिव्यदृष्टि दूंगी"।

लक्खू चुप चाप सुनता था; टिड्डा धीरे से निकल भागा। लक्खू डिबिया लेकर उछलते कूदते घर आया। उसने घर आकर देखा कि एक भिखारी दरवाज़े पर खड़ा भीख मांग रहा है। लक्खू बाबू के पास पैसा था; किन्तु भिखमङ्गे को देने का मन नहीं था। वह भिखारी को टरकाने जाता था, कि खिड़की के पास उसने नवलकिशोर चाचा को देखा। नवलकिशोर चाचा लक्खू को दान करते देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं और दान का चौगुना इनाम देते हैं। चाचा को देखकर लक्खू ने भिखारी को दो पैसे दिये। उस दिन नवलकिशोर बड़े प्रसन्न थे; उन्होंने लक्खू को एक अठन्नी इनाम दी। लक्खू ने सोचा—देखूं तो सही डिबिया में रुपया आया है कि नहीं; भिखारी को पैसा देना तो अच्छा काम है। डिबिया खोलकर देखा तो ठन् ठन् गोपाल! किसीने कहा—"अठन्नी के लोभ से पैसा दिया था; अठन्नी मिलगई। मुँह मत बनाओ; रुपया नहीं पाओगे"।

लक्खू के साथी मोती को बड़े ज़ोर से ज्वर आया था। लक्खू उसे देखने गया। मोती अनार के लिये रोता है। मोती की मा उसे पुचकारती और समझाती थी—"अनार कहां पावें बेटा। रोओ मत, देखो लोटा गिरवी रखकर तुम्हारे लिये दवा लाई हूं"। लड़का थोड़े समझता है। वह रोताही रहा। मोती की मा की बात सुनकर लक्खू को बड़ा दुःख हुआ। वह चुपके एक काबुली की दूकान से दो आने का अनार मोल लाकर मोती को दे आया। मोती की मा ने लक्खू को बहुत बहुत आशीर्वाद दिया। ठन् ठन्! यह क्या? लक्खू ने डिबिया खोलकर देखा; दो झलकते रुपये डब्बी में आगये हैं।

घर आकर लक्खू बाबू ने देखा कि उसकी छोटी बहन जानकी उसकी क ख ग घ लिखने की कापी लेकर इधर उधर फाड़फूड़ कर रही है। "बेवकूफ़! यह क्या करती है?" कह कर लक्खू बाबू ने जानकी के गाल पर एक थप्पड़ जमा दिया और कापी छीनली। ठन्! डिबिया में से एक रुपया उड़ गया।

एक दिन लक्खू कांच की सेना लेकर खेलता था। दो तरफ़ सिपाहियों की दो क़तार कन्धे पर बन्दूक़ लिये खड़ी हैं। लक्खू कभी एक सिपाही को आगे बढ़ाता है; कभी दूसरे को पीछे हटाता है; और तीसरे को बगल में खड़ा करता है। वह बड़ा व्यग्र हो रहा है। घनघोर लड़ाई के पहले कौन सेनापति स्थिर रह सकता है? इतने में जानकी चिल्लाई। "बइया! बइया! अमाले लथ का पइया तेला ओगया"। उंह! यह इस समय भी तङ्ग करती है। लक्खू ने पहले सोचा कि जानकी को डांटकर भगा दूं; किन्तु मा की बात याद आगई। "छिः भाई भी कहीं छोटी बहन से झगड़ा करता है? वह अभी बच्ची है; उसकी समझही कितनी है"। लक्खू ने लड़ाई रोककर जानकी के रथ का जो पहिया टेढ़ा हो गया था उसे सीधा कर दिया। ठन्! फिर रुपया आया। अजी तब तो स्वर्ग का रुपया बड़ा सस्ता है।

पहले लक्खू रुपये के लालच से अच्छे अच्छे काम करता था। अब उसको ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह भूलकर भी बुरा काम नहीं करता।

आज लक्खू के पास डिबिया भर रुपया है। वह बड़े आनन्द में है। तुम पूछते हो लक्खू बाबू को इतना आनन्द क्यों है? तुम्हारे पास एक सन्दूक़ रुपया है; तुमको तो इतना आनन्द नहीं? क्यों होगा? यह रुपया और तुम्हारा रुपया क्या एकही है? लक्खू बाबू ने क्या किसीकी रोटी छीनकर रुपया बटोरा है; या किसीकी जमा मारकर अपनी डब्बी भरी है?

परी की बात झूठ नहीं होती। अब स्वर्ग देखने का उपाय हुआ। आनन्द में मग्न होकर लक्खू बगीचे में टहलता था। इतने में एक बूढ़े सन्यासी ने वहां आकर उसको आशीर्वाद दिया। लक्खू

बाबू के कुछ पूछने से पहले ही सन्यासी कहने लगा—बच्चा ! तुम्हारे हाथ की डिबिया मैंने देखी है; उसमें स्वर्ग का रुपया है। मेरे पास भी ऐसाही एक डिबिया रुपया था। कल गङ्गा जी में नहाते समय डिबिया गिर गई। बुढ़ापे में स्वर्ग जाना चाहता था; किन्तु जो सहारा था वही खोगया; अब कैसे जाऊं। तुम अगर अपनी डिबिया मुझे देदो तो स्वर्ग चला जाऊं। तुमको बड़ा पुण्य होगा"। अरे राम ! सन्यासी तो बड़ा लालची निकला। वह जानता है कि कितनी मिहनत से डिबिया भर रुपया होता है। लक्खू बाबू के इतने यत्न का धन माँगने में उसको लाज नहीं आई।

किन्तु लक्खू इस असमञ्जस में नहीं पड़ा। उसने सोचा कि सन्यासी बहुत बूढ़ा हो गया है। अब वह फिर से रुपया बटोर कर स्वर्ग नहीं जा सकता। और मुझको अभी बहुत समय है। इच्छा करनेही से ऐसी ऐसी कई डिबिया रुपया मैं जमा कर सकता हूं। लक्खू बाबू ने हर्षितचित्त से सन्यासी को डिबिया देदी। सन्यासी ने डिबिया लेकर कहा—"बच्चा ! तुम्हारा दान व्यर्थ नहीं जायगा। मेरे पास एक चीज़ है, उसे मैं तुमको देता हूं, आँख मूंदो"। लक्खू बाबू ने आँखें मूंदीं। सन्यासी ने उसकी आंखों पर हाथ फेर दिया। लक्खू ने आँख खोलकर देखा तो सन्यासी नहीं है। किन्तु उसकी आँखें नई हो गईं। वह सब कुछ नया देखने लगा।

लक्खू जिस दिव्यदृष्टि के लिये तरसता था, आज वही दिव्यदृष्टि उसको मिलगई। वह मर्त्य-लोक में रहकर स्वर्ग की अपूर्व शोभा देखने लगा; मर्त्यलोक में रह कर स्वर्ग का अनिर्वचनीय सुख भोगने लगा। अगर मर्त्यलोक में रहकर स्वर्गसुख चाहते हो तो परोपकार करो; परोपकार के लिये प्राण की भी परवाह मत करो; स्वार्थी और कञ्जूस कभी मत बनो। बाबा तुलसीदास भी कह गये हैं—

परहित सरिस धर्म्म नहिँ भाई।

महावीरप्रसाद।

आर्य्यों का आदिम-स्थान।

पूना के "केसरी" नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र के सम्पादक पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक, बी॰ ए॰, यल॰ यल॰ बी॰, को लोग जितना उनकी विद्वत्ता के कारण जानते हैं उससे अधिक उनको उनके दुर्भाग्य के कारण जानते हैं। जब पहले पहल "केसरी" का जन्म हुआ था तभी एक मान-हानि के मुक़द्मे में फँसने से उनको कई महीने कारागार-वास करना पड़ा था। १८९७ ईसवी में "शिवाजी के उद्गार" शीर्षक कविता प्रकाशित करने पर उनके ऊपर जो आपत्ति आई उससे उनका नाम प्रायः सारे भारतवर्ष भर ही में नहीं, किन्तु विलायत तक में हुआ। इस आपत्ति के कुछ अंश से उद्धार पाने में तिलक जी की विद्वत्ता ही उनकी सहायक हुई। वैदिक साहित्य के वे अगाध पण्डित हैं; दूसरे देशों के साहित्य में भी उनकी पारदर्शिता कम नहीं है। इस विपत्ति के पाँच सात वर्ष पहले उन्होंने "ओरायन" (Orion or Researches into the Antiquity of the Vedas) नामक एक पुस्तक लिखी थी। "ओरायन" का अर्थ है "अग्रहायण"। इसमें उन्होंने वैदिक मन्त्रों की प्राचीनता प्रतिपादन की है; और ईसा के ६,००० वर्ष पहले की बातें उन्होंने वेद से सिद्ध की हैं। इसी पुस्तक पर लुब्ध होकर अध्यापक मोक्षमूलर ने उनको, जब वे पूर्वोक्त विपत्ति में पड़े थे तब, अपना सम्पादित किया हुआ ऋग्वेद भेजा; और उनकी सिफ़ारिश महारानी विक्टोरिया तक से की। इसके कुछही दिन पीछे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने उनको आपत्ति-मुक्त कर दिया। परन्तु तिलक महाशय के समान दुर्दैवग्रस्त शायदही कोई दूसरा मनुष्य हो। एक के अनन्तर एक आपत्ति उनको घेरेही रहती है। इस समय भी वे एक वसीयतनामे के झगड़े में फँसे हैं। इसी लिए हम कहते हैं, कि उनकी विद्वत्ता के कारण उनको

विद्वान् ही विशेष जानते हैं; परन्तु दैवदुर्विपाक-जनित उनकी आपदाओं के कारण उनको सभी जानते हैं।

विद्वानों का पहले यह अनुमान था कि ऋग्वेद के प्राचीन से प्राचीन मन्त्र कोई ३००० वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं। परन्तु "ओरायन" में तिलक महाशय ने यह सिद्ध कर दिखाया कि वैदिक ऋचाओं की रचना ईसा के ४,५०० वर्ष पहले और ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना ईसा के २,५०० वर्ष पहले ही हो चुकी थी। उनके मत में वेद और ब्राह्मण इससे अधिक पुराने नहीं हैं। उन्होंने लिखा है कि वैदिक-काल में वासन्तिक विषुवत् (वसन्त ऋतु का अहोरात्र-समत्व) अग्रहायणी संक्रान्ति में हुआ करता था; परन्तु ब्राह्मण-काल में वही कृत्तिका में होने लगा था। इसी प्रमाण पर उन्होंने वेद और ब्राह्मण-काल का पूर्वोक्त अनुमान किया है। योरप और अमेरिका के विद्वानों ने पहले यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया; परन्तु उन्होंने जब विशेष गवेषणा की तब उनको भी "ओरायन" के सिद्धान्त पर विश्वास आने लगा। इसका फल यह हुआ कि वेदों की और भी अधिक प्राचीनता सिद्ध हुई। यहां तक कि अमेरिका के बोस्टन विश्व-विद्यालय के सभापति डाक्टर वारन ने एक पुस्तक* लिखकर यह अनुमान किया कि मनुष्य-जाति का आदिम निवास उत्तरी ध्रुव के आस पास था; और वही हिन्दू तथा पारसियों का स्वर्ग कहलाता था।

तिलक महोदय ने "ओरायन" में जो कुछ कहा है उसीकी अनुवृत्ति एक नये अँगरेज़ी ग्रन्थ में उन्होंने की है। इसका नाम है Arctic Home in the Vedas—अर्थात् उत्तरी ध्रुव में रहने का वेदों में प्रमाण। यह अभी कुछ ही दिन हुए प्रकाशित हुआ है। इस में जो बातें कही गई हैं उनके कुछ अंश का अनुमोदन डाक्टर वारन ने पहलेही से कर रक्खा था। जैसा ऊपर कहा गया है, डाक्टर वारन ने यह अनुमान किया था, कि आदिम आर्य्य उत्तरी ध्रुव के आस पास रहते थे; और वही पीछे से स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु इस बात को सप्रमाण सिद्ध करने का पुण्य तिलक ही के भाग्य में था। यह पुस्तक तिलक की उद्भट विद्वत्ता और सुतीक्ष्ण बुद्धि की उत्कट प्रमाण है। इसको पढ़कर बड़े बड़े विद्वानों* ने ग्रन्थकर्त्ता की सहस्रमुख से प्रशंसा की है। औरों की तो बातही नहीं "पायनियर" तक ने इसके स्तुति-पाठ में अपना एक स्तम्भ ख़र्च किया है! पहली बार, तिलक के साथ जब उनके मित्र गोपाल गणेश आगरकर, यम० ए०, कारागार-वासी हुए थे तब उन्होंने कारागारही में एक पुस्तक लिखी थी। सुनते हैं, तिलक ने भी यह नई पुस्तक, इस बार, जेल में आरम्भ की थी; और उसकी बहुत कुछ सामग्री उन्होंने वहीं इकट्ठी की थी। वहां के कठिन परिश्रम के अनन्तर जो समय उनको मिलता था उसमें वे वैदिक साहित्य से प्रमाण संग्रह करते थे।

असामान्य-बुद्धि-वैभव-शाली पुरुषों की सभी लीलायें असामान्य होती हैं। बड़ी बड़ी आपत्तियों में भी उनका चित्त चञ्चल नहीं होता; उनकी बुद्धि पूर्ववत् बनी रहती है; वे ज़रा भी धैर्य-च्युत नहीं होते। तिलक महाशय इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

तिलक ने अपनी इस नई पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि आदिम आर्य्य मेरु-प्रदेश, अर्थात् उत्तरी ध्रुव, के आस पास कहीं रहते थे। इस अनुमान के सिद्ध करने के लिए उन्होंने वेद से, पारसियों की धर्म्म-पुस्तक अवेस्ता से, और प्राचीन

* Paradise Found or the Cradle of the Human Race at the North Pole.

* इलाहाबाद के म्युअर सेंट्रल कालेज के प्राधानाध्यापक डाक्टर थीबो, तिलक के इस सिद्धान्त को सच्चा नहीं समझते। आपने एक व्याख्यान में ऐसाही कहा है। परन्तु जब तक डाक्टर साहब इस सिद्धान्त का प्रमाणपूर्वक खण्डन न करें तब तक उनका कथन नहीं स्वीकार किया जा सकता।

ग्रीक लोगों के यहां प्रचलित गाथाओं से प्रमाण उद्धृत किये हैं। उनके लेखन-कौशल, उनकी प्रमाण-चयन-प्रणाली, उनकी तर्कना-पद्धति को देखकर आश्चर्य्य होता है। उन्होंने अपने मत को इस योग्यता से प्रतिपादन किया है कि उसे स्वीकार करने में बहुत ही कम सन्देह किया जा सकता है। किस अकाट्य युक्ति से उन्होंने आर्य्यों का आदिम स्थान उत्तरी ध्रुव में निश्चय किया है, उसका कुछ आभास हम यहां पर देना चाहते हैं। परन्तु उत्तरी ध्रुव में रहने का नाम सुनतेही आश्चर्य्य होता है; और इस बात पर विश्वास नहीं आता। जो प्रदेश सर्वथा हिमाच्छन्न; जहां जल और थल में कुछ भी भेद नहीं, सभी हिममय; जहां डाक्तर नान्सेन के दृढ़ से दृढ़ जहाज़ बर्फ की चट्टानों से टकराकर टूटने से बचे, वहां वास! यह बिलकुलही असम्भव जान पड़ता है; परन्तु यदि मेरु-प्रदेश में आर्य्यों का वास न माना जाय तो वेद के अनेक मन्त्रों का ठीक ठीक अर्थही नहीं हो सकता। अतएव आज कल के इस बर्फ से ढके हुए देश में, किसी समय आर्य्यों का निवास लाचार होकर माननाहीं पड़ता है।

सूर्य की गति के हिसाब से पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के निरक्ष-वृत्त से ६६ और ९० अंश के बीच का प्रदेश हिम-मण्डल कहलाता है। यह सदैव बर्फ से आच्छन्न रहता है। लापलैण्ड और साइबेरिया का कुछ भाग इसी मण्डल के अन्तर्गत है। इसमें प्रायः लाप जाति के मनुष्य बसते हैं। इस समय वहां जितना शीत पड़ता है, किसी समय, इससे भी अधिक पड़ता था। यहां तक कि बर्फ की नदियां बड़े वेग से बह निकलती थीं और उनके प्रवाह में पड़कर देश के देश उजाड़ होकर उनके नीचे दब जाते थे। इस हिम-प्रलय का प्रमाण वर्तमान हाथी का प्रपितामह ममोथ (Mammoth) नामक ऐरावत है। इस समय यह जीव पृथ्वी में नहीं रह गया। परन्तु साइबेरिया में इसके सैकड़ों अस्थि-पञ्जर बर्फ में पड़े हुए पाये गये हैं। किसी किसी ऐरावत के शरीर में मांस और चमड़ा भी पूर्ववत् पाया गया है। ये जीव हिम-प्रवाह के समय प्रवाह में पड़कर ज़मीन में गड़ गये हैं। इसके सिवाय भूगर्भ-विद्या के जाननेवालों ने हिम-प्रलय के और भी कई प्रमाण पाये हैं। इस पहले प्रलय को हुए नहीं मालूम कितने हज़ार वर्ष हुए। उसके अनन्तर और भी कई हिम-प्रलय हुए हैं। इस ऐरावत के दाँतों में उसका चित्र भी खोदा हुआ मिला है। चित्र निःसंशय मनुष्य के ही द्वारा खींचा गया होगा। फिर, मिश्र देश में कोई आठ हज़ार वर्ष की पुरानी क़बरें मिली हैं। उनके भीतर से पत्थरों के हथियार, कई प्रकार के बर्तन और मनुष्यों के सकेश अस्थि-पञ्जर आदि निकले हैं। इन बातों से सिद्ध है कि जो लोग मानव-जाति की उत्पत्ति ईसा के चार ही पाँच हज़ार वर्ष पहले मानते हैं उनका मत सर्वथा अग्राह्य है। ईसा के कम से कम आठ हज़ार वर्ष पहले भी मनुष्य की सृष्टि हो चुकी थी!

तिलक महाशय, अपनी इस नई पुस्तक में, कहते हैं, कि पूर्वोक्त हिम-प्रलय के समय पुराने आर्य, हिम-मण्डल को छोड़कर, कुछ दक्षिण की ओर, चले आये थे। वहां आने के कई हज़ार वर्ष पहले वे मेरु-सन्निहित देश (Arctic regions) अर्थात् उत्तरी ध्रुव के निकट रहते थे। उस समय उस प्रदेश में चिरकाल शरद् ऋतु रहती थी। जब शीत का आधिक्य अर्थात् हिम-प्रलय हुआ तब उन्होंने वह देश छोड़ दिया। हिम-प्रलय होने पर मेरु-प्रदेश मानव-जाति के रहने योग्य न रहा। आर्य्यों के दक्षिण की ओर चले आने पर, फिर भी, हिम के कई खण्ड-प्रलय हुए। इस कारण आर्य्यों को धीरे धीरे वह देश भी छोड़ कर, और नीचे, दक्षिण की ओर, बढ़ आना पड़ा। तिलक के मत में अन्तिम हिम-प्रलय हुए १०,००० वर्ष हुए; और कोई ६००० वर्ष ईसा के पहले आर्य्य-गण मध्य एशिया में रहने लगे थे।

श्रीमान् तिलक ने आर्य्यों के मेरु-प्रदेश में रहने का जो सिद्धान्त निकाला है उसके अब संक्षिप्त प्रमाण सुनिये—

वेद में उत्तरी-ध्रुव सम्बन्धी जो बातें हैं वे तो है हीं, पारसियों का धर्म्म-पुस्तक अवेस्ता में यह बात अधिक स्पष्टता से लिखी है कि "ऐरयान वायजो" (Airyana Vaejo) अर्थात् आर्य्यों का स्वर्ग-लोक, एक ऐसे प्रदेश में था, जहां वर्ष में एकही बार सूर्योदय होता था; इस स्वर्गलोक को बर्फ़ की वर्षा ने नाश कर दिया; इसलिए उसे छोड़कर आर्य लोग दक्षिण की ओर चले आये। वेद और अवेस्ता के कितनेही वचन इस बात की साक्षी देते हैं, कि हिम-प्रलय के पहले मेरुप्रान्तमें बहुत कम जाड़ा पड़ता था। वहां एक प्रकार का सदा-वसन्त रहता था। स्पिट्ज़बर्ग्यन के समान स्थानों में, जहां, इस समय, नवम्बर से मार्च तक, सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है, उस समय ऐसे लता-पत्र और घास-पात उगते थे जो आज कल न बहुत सर्द और न बहुत गरम जल-वायु-वाले देशों में ही होते हैं। इसके सिवा खगोल-विद्या-विषयक कुछ बातें ऐसी हैं जो मेरु-प्रदेश में एक विशेष रूप में पाई जाती हैं। इन विशेष बातों का उल्लेख यदि वेद में मिले तो उससे यह निर्विवाद सिद्ध हो जाय कि वैदिक ऋषि उस प्रदेश से परिचित थे और उनके पूर्वज, किसी समय, वहां रहते थे।

उत्तरी ध्रुव में आकाश-मण्डल सिर के ऊपर घूमता हुआ जान पड़ता है। वह उत्तरी ध्रुव की खगोल-सम्बन्धिनी एक विशेष बात है। इसका वर्णन वेदों में विद्यमान है। उनमें आकाश के घूमने की उपमा चक्के (पहिए) से दीगई है; और लिखा है, कि यह दिव्य मण्डल मानों एक धुरी के ऊपर रक्खा हुआ घूम रहा है।

इन्द्राय गिरो अनिशित् सर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।
यो अक्षेणेव च क्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भपृथिवीमुत द्याम्॥

ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ८९, मन्त्र ४।

इसमें यह कहा गया है कि इन्द्र अपनी शक्ति से पृथ्वी और आकाश को इस प्रकार अलग अलग थाँभे हुए है जैसे गाड़ी के दोनों चक्कों को उसका धुरा थाँभे रहता है। तिलक का कथन है कि आकाश का चक्रवत् भ्रमण मेरु-प्रदेश की अवस्था का सूचक है।

इस देश के संस्कृत-साहित्य में यह बात ठौर ठौर पर पाई जाती है कि देवताओं का दिन-रात छ छ महीने का होता है। यह बात पुराणों में भी लिखी है; महाभारत में भी है; और ज्योतिष के सिद्धान्त-ग्रन्थों में भी है। पुराने ज्योतिषियों ने मेरु-पर्वत को पृथिवी का उत्तरी ध्रुव माना है, और सूर्य्य-सिद्धान्त में लिखा है—

मेरौ मेषादि चक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम्।
* * * * * *

—अ० १२, श्लोक ६७

अर्थात् मेरु में मेषादि चक्रार्द्धगामी सूर्य को देवता सदा देखते हैं।

यदि आर्य्यों के पूर्वज कभी उत्तरी ध्रुव में रहते थे तो उनके देवता भी निःसन्देह वहीं कहीं रहते रहे होंगे। प्राचीनों पर नवीनों की विशेष श्रद्धा होती है। इस समय हमलोग प्राचीन ऋषि-मुनियों को देवताओं से कम नहीं समझते। अतएव सर्वथा सम्भव है, कि वैदिक आर्य्यों ने अपने पूर्वजों को देवता माना हो। अब मनुस्मृति का एक प्रमाण सुनिए-

दैवे रात्र्यहनी वर्षे प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनो रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्॥

—अ० १, श्लोक ६७

अर्थात् मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन-रात के बराबर है। इन दोनों का फिर इस प्रकार विभाग किया गया है—सूर्य का उत्तराभिमुख गमन दिन है और दक्षिणाभिमुख गमन रात। महाभारत में तो सुमेरु का ऐसा अच्छा और स्पष्ट वर्णन है कि उसे पढ़कर इसमें कोई शङ्का नहीं रह जाती कि वह उत्तरी ध्रुव का वर्णन है। वन-पर्व

के १६३ और १६४ अध्यायों में अर्जुन के सुमेरु पर्वत पर जाने का विस्तृत वर्णन है। वहां लिखा है–

एनं त्वहरहर्मेरुं सूर्याचन्द्रमसौ ध्रुवम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य कुरुतः कुरुनन्दन ॥
ज्योतींषि चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघ सर्वतः ।
परियान्ति महाराज गिरिराजं प्रदक्षिणम् ॥

अ० १६३, श्लोक ३७-३८

सूर्य्य और चन्द्रमा, प्रति दिन, बाईं से दाहनी ओर को, सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हैं; तारागण भी ऐसाही करते हैं। थोड़ी दूर पर फिर लिखा है–

स्वतेजसा तस्य नगोत्तमस्य महोषधीनाञ्च तथा प्रभावात् ।
विभक्तभावो न बभूव कश्चिदहोनिशानां पुरुषप्रवीर ॥

अ० १६४, श्लोक ८

अपनी दीप्ति और महौषधियों से सुमेरु पर्वत अन्धकार को यहां तक जीत लेता है कि रात और दिन का भेद ही नहीं रह जाता है। आगे लिखा है–

* * * * * *

बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां सम्वत्सरेणैव समानरूपः ॥

अ० १६४, श्लोक १३

वहां के रहनेवालों का रात-दिन मिलाकर हमलोगों का एक वर्ष होता है। इन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि महाभारत के समय उसके रचयिता को उत्तरी-ध्रुव का ठीक ठीक ज्ञान था। सुमेरु की दीप्ति का जो उल्लेख है उससे, बहुत करके; मेरु-ज्योति (Aurora Borealis) से अभिप्राय है। यह ज्योतिर्माला उत्तरी ध्रुव में ही देख पड़ती है। ये बातें ऐसी हैं जो ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धिनी गणना, अर्थात् गणित, द्वारा नहीं जानी गई होंगी; क्योंकि उस समय ज्योतिष विद्या की इतनी उन्नति नहीं हुई थी। बिना आँख से देखे, अथवा जिसने देखा है उससे सुने, इनका इतना विशुद्ध ज्ञान नहीं हो सकता। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तो स्पष्ट लिखा है कि जिसे हम वर्ष कहते हैं वह देवताओं का एक दिन है (३, ९, २२, १)। पारसियों की अवेस्ता में भी ठीक एक ऐसी ही उक्ति है।

उत्तरी ध्रुव में चैत्र से भादों तक अविराम दिन रहता है; और आश्विन से फाल्गुन तक अविराम रात रहती है। यह ९० अक्षांश की बात है। यहां, रात के आरम्भ और अन्त में, ५२ दिन तक, बराबर उषःकाल रहता है। ८९ अक्षांश से नीचे के भू-भाग में क्रम क्रम से इस परिमाण में अन्तर पड़ता जाता है। यहां पर यह शङ्का हो सकती है कि जहां छ महीने रात रहती है वहां मनुष्य कैसे रह सकता है। इसका समाधान बहुत सरल है। पहले तो ऐसे स्थानों में, चार महीने के लग भग तड़का (उषःकाल) रहता है। गरमियों में पाँच बजे प्रातःकाल और सात बजे सायङ्काल, जितना उजियाला रहता है उतना ही वहां रहता है। अतएव कोई सांसारिक काम, उस समय, रुक नहीं सकते। फिर, जो दो महीने रात रहती है उसमें मेरुज्योति का बहुतही मनोमोहक प्रकाश होता है। मेरुप्रदेश में भ्रमण करनेवाले डाक्तर नान्सेन ने मेरुज्योति (Aurora Borealis) का बड़ा ही विलक्षण वर्णन किया है। उन्होंने लिखा कि "उसकी शोभा और आभा का वर्णन शब्दों द्वारा किया जाना सर्वथा असम्भव है। वह अन्तर्हित प्रकाश-पुञ्ज है। बिना देखे उसकी सुन्दरता का अनुमान मनुष्य को स्वप्न में भी नहीं हो सकता। वह आकाश में नृत्य सा किया करती है। वह कभी कभी तेजोमय सर्पाकृति धारण करके सिर के ऊपर भाँति भाँति के खेल से करती हैं"। अतएव, रात में जहां ऐसा अलौकिक प्रकाश होता है वह देश मनुष्य-निवास के सर्वथा योग्य समझना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं। डाक्तर नानसेन के अनुसार तो मेरुप्रदेश के समान रमणीय और देशही नहीं। फिर, जिस समय, आर्यगण वहां रहते थे उस समय वहां इतना शीत न पड़ता था। शीत कुछ था अवश्य; परन्तु वसन्त ऋतु का सा। शीतही के कारण, अनुमान होता है, प्राचीन आर्य हवन करने लगे थे। उनके अग्निहोत्री और हवन-प्रिय होने का यही कारण जान पड़ता है। दीप-दान इत्यादि की प्रथा भी इसी कारण से प्रचलित हुई जान पड़ती है। दीपक का उपयोग रात ही में होता है। दिन में किसी देवता को दीप दिखलाना और न दिखलाना बराबर है।

प्रति वर्ष विषुव-वृत्त से उत्तर की ओर २४ अंश और दक्षिण की ओर भी उतने ही अंश तक सूर्य का आवागमन होता है। वैदिक काल में जब सूर्य विषुव-वृत्त से उत्तर को जाता था तब उसे उत्तरायण संज्ञा प्राप्त होती थी; और जब वह उस वृत्त से दक्षिण को गमन करता था तब वह दक्षिणायन कहलाता था। इसी उत्तरायण का नाम वेद में देवयान और दक्षिणायन का पितृयान है। इस देवयान और पितृयान का ऋग्वेद संहिता में अनेक बार उल्लेख आया है। एक उदाहरण लीजिए—

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्यन्तमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः।
अभूदुकेतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः॥
मं० ७, सूक्त ७६, मन्त्र २

अर्थात् देवयान मार्ग हमको देख पड़ने लगा; उषा का केतु (पताका) पूर्व दिशा में उदित हो गया। देवयान का उलटा पितृयान है; उसका भी उल्लेख ऋग्वेद में है। यथा—

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥
मण्डल १०, सूक्त १८, मन्त्र १

इसमें "देवयानात् इतरः", इन शब्दों से पितृयान अर्थ लिया गया है; क्योंकि देवयान का उलटा पितृयान ही हो सकता है। यहां पर पितृयान, मृत्यु का मार्ग माना गया है। जब देवयान का आरम्भ उषा अर्थात् प्रातःकाल से होता था, तब पितृयान का आरम्भ सायङ्काल से होना ही चाहिए। इसीलिए तिलक महाशय का अनुमान है कि देवयान से वैदिक ऋषियों का आशय दिन और पितृयान से रात का था। इन दो भागों में, उस समय, वर्ष विभक्त था। यह लक्षण मेरुप्रदेश में तब भी पाया जाता था और अब भी पाया जाता है। पारसियों के धर्म्म ग्रन्थ में भी यही बात लिखी है। वहां इसका और भी स्पष्ट वर्णन है। लिखा है कि—"जिसको वर्ष कहते हैं उसको वे लोग एक दिन मानते हैं। वहां पर चन्द्र, सूर्य आदि वर्ष में एकही बार उदित और अस्त होते हैं; और एक दिन एक वर्ष के समान जान पड़ता है"। इससे अधिक स्पष्ट मेरुप्रदेश का वर्णन और क्या होगा? दक्षिणायन सूर्य ही का नाम पितृ-यान है। पितृयान में मरना अशुभ माना गया है; इसलिये भीष्म शरशय्या पर बहुत दिन तक पड़े पड़े, मरने के लिए, देवयान की प्रतीक्षा करते रहे। पितृयान में बराबर ६ महीने तक रात रहती थी। रात में मृतकों का दाह कर्म्म अच्छी तरह नहीं हो सकता; इसीलिए उस काल में मरना बुरा माना गया है। इससे हज़ारों वर्ष की पुरानी रूढ़ि का चिन्ह अब तक, इस देश में, विद्यमान है। अब यहां यद्यपि केवल बारह घण्टे की रात होती है, तथापि रात में चितादाह नहीं होता। यह रीति उसी प्राचीन वैदिक रीति की सूचक है।

वैदिक साहित्य में लम्बी उषाओं का भी वर्णन है। जैसा पहले हम एक जगह लिख आये हैं, उत्तरी ध्रुव में लग भग दो महीने तक उषा अर्थात् प्रातःकाल रहता है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि "गवामयनम्" सत्र में होता (हवन करनेवाला) उषःकाल रहते रहते, एक हज़ार ऋक् पाठ करता था। आश्वलायन और आपस्तम्भ ने तो यहां तक कहा है कि सूर्योदय के पहलेही वे ऋग्वेद के समग्र दश मण्डलों की आवृत्ति करेंगे। इससे सिद्ध है कि उस समय बहुत देर में सूर्योदय होता था। ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ७६वें सूक्त के अन्तर्गत तीसरे मन्त्र में लिखा है—"सूर्योदय के पहले बहुत दिन थे; उन दिनों में, हे उषा, तुम सूर्य की ओर जाती थीं"। यहां पर, देखिए, बहु-काल-व्यापिनी उषा का स्पष्ट उल्लेख है। ऐसी उषा केवल उत्तरी ध्रुव में होती है; अन्यत्र नहीं।

जैसे प्रमाण ऊपर दिये गये हैं वैसे अनेक प्रमाण तिलक ने अपने अपूर्व-पाण्डित्य-पूर्ण ग्रन्थ में दिये हैं। वेदों से, ब्राह्मणों से, पुराणों से, ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों से, पारसियों के धर्म-ग्रन्थ से और ग्रीक लोगों की प्राचीन गाथाओं से उन्होंने ऐसे अनेक वचन उद्धृत किये हैं जिनसे यह निर्विवाद

सूचित होता है कि किसी समय हमलोगों के पूर्वज मेरु-प्रदेश में रहते थे। यही नहीं, भूगर्भ-विद्या के अखण्डनीय सिद्धान्तों द्वारा उन्होंने यह भी प्रायः सिद्ध कर दिया है कि मानव-सृष्टि का आरम्भ हुए अनन्त काल व्यतीत हुआ; पहले हिम-प्रलय के पूर्व प्राचीन आर्य्य उत्तरी ध्रुव के ठीक आस पास रहते थे; और अन्तिम खण्ड-प्रलय हुए कोई १०००० वर्ष हुए।

यहां पर एक शङ्का होती है कि यदि आदिम आर्य मेरुप्रदेश में रहते थे; और वेदों में जो आकाश-मण्डल, चन्द्र-सूर्य, दिन-रात, और उषा आदि का वर्णन है वह यदि उसी प्रदेश का है, तो उन्होंने वेद में कहीं इस बात का उल्लेख क्यों नहीं किया। विचार करने का विषय है, कि हमलोगों को जब सौ पचास वर्ष की बात स्मरण नहीं रहती; जब हम, इस समय भी, इतिहास की बड़ी बड़ी घटनाओं को भूल जाते हैं; जब हम अपने पूर्वजों के नाम तक कभी कभी नहीं बतला सकते; तब यदि हज़ारों वर्ष पहले के अपने निवास-स्थान को आर्य भूल जावें तो क्या आश्चर्य्य है? फिर, वे एक प्रकार से भूले भी नहीं। वंशपरम्परा से जो कुछ उन्होंने सुन रक्खा था उसे उन्होंने वैदिक साहित्य में सन्निविष्ट भी कर दिया। देवरूपी अपने पूर्वजों के दिन रात, और सायं प्रातः आदि का थोड़ा बहुत वर्णन करने में वे नहीं चूके।

हज़ारों वर्ष से हमलोग वेदाध्ययन करते आये हैं; परन्तु उनके अध्ययन द्वारा आर्यों के आदिम स्थान का पता, आज तक, कोई नहीं लगा सका। उसका श्रेय तिलक के लिए था; वह उनको आज प्राप्त हुआ। यदि इस बात का प्रमाण-कर्ता कोई विलायती पण्डित होता तो उसकी कीर्ति न जानें कहां कहां अब तक फैल गई होती। माननीय तिलक इस अर्द्ध-शिक्षित हिन्दोस्तान के वासी हैं; इसलिए उनका यश उतना शीघ्र न प्रसरित होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उन्होंने अपनी तीव्रबुद्धि और गम्भीर गवेषणा से एक ऐसे ऐतिहासिक तत्व का पता लगाया है कि जो कोई उनके ग्रन्थ को पढ़ैगा वह अवश्य उनकी प्रशंसा करैगा। उनकी पुस्तक को पढ़कर, उनके अकाण्ड परिश्रम का विचार करके, पढ़नेवाले के मन में एक अपूर्व भक्ति-भाव उदित होता है। ऐसे अनेक वैदिक मन्त्र हैं जिनका आशय ठीक ठीक समझ में नहीं आता; परन्तु तिलक महोदय के मत का प्रचार होने पर, उनकी पुस्तक से सम्बन्ध रखनेवाले उन मन्त्रों का भाव सहजही में स्पष्ट हो जायगा। इस पुस्तक के लिए बहुत कुछ सामग्री पुस्तक-कर्ता ने, कारागार में ही, एकत्रित करली थी। यह उनके लिए और भी अधिक प्रशंसा की बात है। एक प्रकार यह अच्छा हुआ जो उनको कारादण्ड मिला। यदि ऐसा न होता तो शायद इस अश्रुतपूर्व वैदिक तत्व का उद्घाटन भी न होता। खेद की बात है कि ऐसा प्रकाण्ड पण्डित, ऐसा वैदिक-तत्व-दर्शी, ऐसा श्रमसहिष्णु, ऐसा गवेषणा-धुरन्धर विद्वान बेतरह विपत्ति-जाल में फँसता रहै!

अण्डमन द्वीप के निवासी*

अण्डमन द्वीपों का साधारण नाम कालापानी है। इनका संस्कृत नाम अन्ध द्वीप है। वहां भारतवर्ष से कैदी भेजे जाते हैं। कैदियों से ही इन द्वीपों को गवर्नमेण्ट आबाद करवा रही है। कैदियों का प्रधान स्थान कालापानी में पोर्टब्लेयर के नाम से प्रसिद्ध है। यहां के आदिम निवासियों का वर्णन सरस्वती के वाचकों को भेट दिया जाता है।

अण्डमन निवासियों की संख्या जिस भाँति दिन प्रति दिन कम होती जाती है, उससे अनुमान होता है कि ये लोग शीघ्र ही एक दम लोप हो जायँगे। इसलिए इन लोगों के सम्बन्ध में अभी से जो कुछ बातें ज्ञात होती जायँ उन्हें लिख रखना परमोपयोगी होगा।

* *A history of our relations with the Andamanese,* compiled from Histories and Travels, aud from the record of the Government of India. By M. V. Portman, M.A.E, &c., Officer in charge of the Andamanese, Two valumes, 1899.